भूले-भट

'शान्तिप्रिय'

भारती साहित्य सदन
नई-देहली

भूले-भटके

'आरिगपूडि'

भारती साहित्य सदन
नई-देहली

प्रकाशक :
भारती साहित्य सदन,
३०/६० कनॉट सरकस, नई दिल्ली-१

प्रथम संस्करण

जून, १९५६

श्री गोपीनाथ से
नवीन प्रेस,

यह भी—

"भूले-भटके" का आधार एक वास्तविक घटना है। कहानी पर
द्यपि कल्पना की मोटी परत है।

समाज को परिवर्तनशील कहा जाता है। कई परिवर्तन व्यक्ति
। सतह पर होते हैं, कई समाज की सतह पर। दोनों में न एक गति है,
निश्चित् परस्पर सम्बन्ध ही। कहीं-कहीं तो वैरुप्य भी होता है।

मनुष्य का मनोवैज्ञानिक विकास जन्म, वातावरण और इच्छा के
ुसार होता है। ये ही दूसरे शब्दों में संस्कार, परम्परा व प्रगति के
। में व्यक्त किये जा सकते हैं। इन तीनों का सामूहिक प्रभाव
न्न-भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न-भिन्न परिमाण में होता है। इन्हीं
उथल-पुथल घटनामय जीवन का इतिहास है। ये ही मानवीय प्रकृति
निर्माता हैं।

संस्कार और परम्परा की भावना भारतीय वर्ण-व्यवस्था में
तः निहित है, पर प्रगति की गति कालक्रम से इनके विरुद्ध ही रही
फलतः जात-पात की व्यवस्था शिथिल हुई पर इतनी शिथिल भी
ं कि सर्वथा स्थानान्तरित कर दी गई हो।

व्यक्ति की सतह पर प्रगति की भी अपनी सीमाएं हैं। इच्छा का
ा सम्भवतः उतना भारी नहीं जितना कि संस्कार और परम्परा
। मेरा संकेत मनुष्य के मूलभूत स्वभाव की ओर है न कि उ

भौतिक कार्यों की ओर।

यह प्रगति की भावना प्रथम दक्षिण में जात-पात विरोधी आंद के रूप में प्रस्फुटित हुई और यह आन्दोलन प्रायः ब्राह्मण-विरोधी लन के तौर पर चलता रहा। इसके कारण दक्षिण में एक असा वातावरण बना। "भूले-भटके" के पात्र उसी वातावरण के प्राणी हैं इस उपन्यास के बारे में यह ही प्राक्कथन है।

कथा कल्पित न होती हुई भी पात्र कल्पित हैं। घटनाक्रम भी एक-एक पात्र में न जाने कितने ही पात्रों का प्रतिबिम्ब है। किसी एक पात्र का किसी एक व्यक्ति विशेष से कोई सम्बन्ध नहीं है।

"आरिगपूडि" मेरे वंश का नाम है। यह मेरा उपनाम भी है मैं तैलुगु-भाषी आन्ध्रवासी हूँ। सहृदय पाठकों का समर्थन मिल यह मेरी आशा है।

ए० रमेश चौ

१३८ शेनोय नगर,
मद्रास—३०
१६ फरवरी, १९५६।

कीर्तिशेष स्व० पूज्य पिता जी को
जिनकी दूरदृष्टि के कारण मैं
राजभाषा सीख सका···
एक अर्घ्य पुष्प ।

"रमेश"

एक

संक्रान्ति का त्योहार था। अवकाश का दिन। घर-घर में उत्सव मनाए जा रहे थे। मन्दिर में बाजे-नगाड़े बज रहे थे।

कोत्तपटनं का उजाड़ कस्बा कभी मशहूर शहर था। बन्दरगाह था। दूर-दूर जहाज जाते थे। लाखों का व्यापार होता था। लोग समृद्ध थे। अब चालीस-पचास परिवार यहाँ रहते हैं। कस्बे के चारों तरफ टूटे-फूटे खण्डहरों के टीले हैं—दीवार हैं तो छत नहीं है, खपरैल के ढेर-के-ढेर जमीन पर पड़े हैं, सुनसान जगह है।

कस्बे से कुछ दूर, टीले पर, समुद्र के किनारे एक प्राचीन मन्दिर अब भी है। कहते हैं कभी समुद्र इसके चरण छूता था, पर आज वह रेती चाटता-चाटता एक फर्लाङ्ग की दूरी पर ही रह जाता है। सवेरे मूर्ति का अभिषेक होता है, शाम को दिये जलाये जाते हैं। शुक्रवार के दिन पूजा-पाठ का भी आयोजन किया जाता है। अन्यथा मन्दिर सदा अवहेलित-सा रहता है। कोई भूला-भटका भक्त कभी-कभी घंटियां बजा जाता है।

परन्तु त्योहारों के अवसरों पर अक्सर यहाँ मेले लगते हैं। दूर-दूर से लोग आते हैं, पूजा-पाठ करते हैं, मनौतियां पूरी करते हैं, समुद्र में स्नान करते हैं और कोत्तपटनं सहसा सजीव हो उठता है।

मन्दिर के उत्तर में एक छोटा-मोटा जंगल है, पश्चिम में खेत और

खेत से सटी एक नहर, पूर्व में रेती है और रेती के बाद विशाल समुद्र। दक्षिण की तरफ एक चौड़ी सड़क है और उसके दोनों ओर खपरैल के घरों की विचित्र कतार है—छत तो एक है पर आँगन अलग-अलग हैं। पचास-साठ परिवार कभी रहते होंगे पर अब तीन-चार परिवार ही रहते हैं। शेष घरों में चमगादड़, उल्लू, बिच्छू, मच्छर आदि वास करते हैं। आज चौड़ी सड़क पर भीड़ थी। लोग अच्छे-अच्छे कपड़े पहन कर इधर-उधर टहल रहे थे। बच्चे भी खेल-खिलवाड़ में मस्त थे। समुद्र के किनारे भी भीड़ थी। बच्चे वहाँ पानी में उछल-कूद रहे थे। लहर के साथ समुद्र में जाते और लहर के साथ वापस चले आते। वे पानी में हिंडोले लेते-से लगते।

सत्यं नहाते-नहाते थक गया और किनारे पर गीली रेती कुरेदने लगा। कुरेद-कुरेदकर उसने रेत का एक ढेर खड़ा कर दिया। एक बड़ी लहर आई और रेत को समतल कर झाग छोड़ती चली गई। सत्यं मुस्करा दिया, हाथ झाड़कर दूसरी जगह चला गया।

समीप ही नलिनी कोई घरौंदा बना रही थी। नलिनी उसी के पड़ोस के घर में रहती थी। पर दोनों का कोई खास परिचय न था। वह कोत्तपटनं में हमेशा रहता भी न था।

"तुमने क्या बनाया है ?" सत्यं ने उससे यों ही बातचीत छेड़ी।

"मन्दिर।" नलिनी ने जवाब दिया, "यह देखो मण्डप, जहाँ भजन होते हैं, और यहाँ देवी है—यह चार दीवारी है।"

"पर क्या मन्दिर ऐसे बनते हैं ? इसके कलश कहाँ हैं ?" सत्यं यह पूछता-पूछता पास के झाड़ से पत्ते और लकड़ियाँ तोड़ लाया, घास फूस भी इकट्ठी करली।

लकड़ी लगाकर उसने दीवारें बनाईं—रेत को उनके सहारे उठा दिया। लकड़ी पर पत्ते बिछाकर छत बनाई और छत पर दूसरी मंजिल बना ही रहा था कि नीचे की दीवार यकायक गिर गई। नलिनी ठहाका मारकर हँसने लगी।

दो

सड़क के किनारे वाले मकान के आखिरी हिस्से में सत्यं अपने पिता के साथ रहा करता था। बाद में एक खण्डहर था, एक नीम का पेड़, दो-तीन बेरी की झाड़ियाँ, फिर नलिनी का छोटा-सा घर।

नलिनी के घर के आंगन में दो भैंसें और एक गाय बँधती थी। एक कुआँ था। उस घर में दो ही प्राणी थे—नलिनी और उसकी माँ।

नलिनी का घराना बहुत पुराना है। उसके पुरखे कभी काफी मशहूर थे। अच्छी जमीन-जायदाद थी। अब उनकी हालत वही थी, जो शायद कोत्तपटनं के मन्दिर की थी—जीर्ण, शीर्ण, उपेक्षित, तिरस्कृत।

नलिनी की माँ, कांचना जवानी में प्रसिद्ध थी। दूर-दूर से लोग उसे देखने आया करते थे। विवाह आदि पर उसको बाजे-गाजे के साथ ले जाया करते। बड़े-बूढ़े अब भी उसके बारे में बातें किया करते हैं। वह नर्तकी थी, उसका कुल निन्द्य था पर उसमें वही आकर्षण था, जो प्राय: एक निषिद्ध वस्तु में होता है।

उसके पूर्वज कभी कोत्तपटनं के मन्दिर में नाचा करते थे। उनको तब देवदासी कहा जाता था। अब भी वह मन्दिर में जाती है, नाचने के लिए नहीं, दो चार पुष्प भगवान पर चढ़ाने के लिए।

कांचना की उम्र चालीस-पैंतालीस की थी। जवानी कभी की जा चुकी थी। वसन्त हेमन्त के रूप में जम गया था। वह शरीर जो कभी

शमा की तरह जला होगा, आज एक राख के ढेर के समान था—मोटा, भारी, पोपला मुख, पान और तम्बाकू से रंगे दांत, मुँह पर सफ़ेद-सफ़ेद चकत्ते, जोड़ों में दर्द—वह यौवन की समाधि लगती थी।

शमा बुझ चुकी थी, परवाने भी न आते थे। जान-पहिचान वाला कभी मजाक-मखौल कर जाता और कांचना जोड़ों को मलती हुई, पान चबाती हुई, किवाड़ के सहारे घंटों बैठी रहती। कुछ सोचती, याद करती। कभी कभी नलिनी को संगीत सिखाती। इस तरह समय काटने का प्रयत्न करती।

रात भर दिया जलता। रह-रहकर कांचना को लगता, जैसे किसी ने किवाड़ खटखटाया हो। वह उठकर किवाड़ खोलने जाती, किसी को न पा आहें भरती। आठ-नौ बजे के करीब उठती। पुरानी आदत अब भी बरबस जारी थी। नलिनी उसकी इस बेबसी के बारे में बेखबर थी।

उम्र ढल गई थी। बीमारी में बहुत-कुछ रुपया समाप्त हो चुका था। जिन दिनों कमाई अधिक थी, खर्च भी ज्यादा था। दसियों रिश्तेदार, इधर—उधर के लोग हमेशा घर किसी-न-किसी बहाने पड़े रहते। बुजुर्गों की जमीन-जायदाद माँ के जमाने में ही समाप्त हो चुकी थी।

अब हालत यह थी कि वह अपना पेशा निभा नहीं पाती थी। आय न के बराबर थी, इसलिये वह दूध बेचा करती। रोजमर्रा का खर्च निकल जाता था। जैसे-तैसे गुजारा कर रही थी।

जब कभी रुपये की सख्त जरूरत होती तो वह नायडू जी को खबर भिजवाती। बहुत मिन्नत के बाद पांच-दस रुपये मिल जाते। कहते हैं कि नायडू जी ने कभी उस पर रुपयों की वर्षा की थी। कांचना उन्हीं के घर तीन-चार साल रही थी। बाद में नायडू जी के घर में कोई झगड़ा हुआ और उनको अलग घर में रख दिया गया। नायडू जी आते-जाते रहते। उन्हीं के रुपयों पर घर का खर्च चलता-

दो

सड़क के किनारे वाले मकान के आखिरी हिस्से में सत्यं अपने पिता के साथ रहा करता था। वाद में एक खण्डहर था, एक नीम का पेड़, दो-तीन वेरी की झाड़ियाँ, फिर नलिनी का छोटा-सा घर।

नलिनी के घर के आंगन में दो भैंसें और एक गाय वँधती थी। एक कुआँ था। उस घर में दो ही प्राणी थे—नलिनी और उसकी माँ।

नलिनी का घराना वहुत पुराना है। उसके पुरखे कभी काफी मशहूर थे। अच्छी जमीन-जायदाद थी। अव उनकी हालत वही थी, जो शायद कोत्तपटनं के मन्दिर की थी—जीर्ण, शीर्ण, उपेक्षित, तिरस्कृत।

नलिनी की माँ, कांचना जवानी में प्रसिद्ध थी। दूर-दूर से लोग उसे देखने आया करते थे। विवाह आदि पर उसको वाजे-गाजे के साथ ले जाया करते। वड़े-वूढ़े अव भी उसके वारे में वातें किया करते हैं। वह नर्तकी थी, उसका कुल निन्द्य था पर उसमें वही आकर्षण था, जो प्रायः एक निषिद्ध वस्तु में होता है।

उसके पूर्वज कभी कोत्तपटनं के मन्दिर में नाचा करते थे। उनको तव देवदासी कहा जाता था। अव भी वह मन्दिर में जाती है, नाचने के लिए नहीं, दो चार पुष्प भगवान पर चढ़ाने के लिए।

कांचना की उम्र चालीस-पैंतालीस की थी। जवानी कभी की जा चुकी थी। वसन्त हेमन्त के रूप में जम गया था। वह शरीर जो कभी

शमा की तरह जला होगा, आज एक राख के ढेर के समान था—मोटा, भारी, पोपला मुख, पान और तम्बाकू से रंगे दांत, मुंह पर सफेद-सफेद चकत्ते, जोड़ों में दर्द—वह यौवन की समाधि लगती थी।

शमा बुझ चुकी थी, परवाने भी न आते थे। जान-पहिचान वाला कभी मजाक-मखौल कर जाता और कांचना जोड़ों को मलती हुई, पान चबाती हुई, किवाड़ के सहारे घंटों बैठी रहती। कुछ सोचती, याद करती। कभी कभी नलिनी को संगीत सिखाती। इस तरह समय काटने का प्रयत्न करती।

रात भर दिया जलता। रह-रहकर कांचना को लगता, जैसे किसी ने किवाड़ खटखटाया हो। वह उठकर किवाड़ खोलने जाती, किसी को न पा आहें भरती। आठ-नौ बजे के करीब उठती। पुरानी आदत अब भी बरबस जारी थी। नलिनी उसकी इस बेबसी के बारे में बेखबर थी।

उम्र ढल गई थी। बीमारी में बहुत-कुछ रुपया समाप्त हो चुका था। जिन दिनों कमाई अधिक थी, खर्च भी ज्यादा था। दसियों रिश्तेदार, इधर-उधर के लोग हमेशा घर किसी-न-किसी बहाने पड़े रहते। बुजुर्गों की जमीन-जायदाद मां के जमाने में ही समाप्त हो चुकी थी।

अब हालत यह थी कि वह अपना पेशा निभा नहीं पाती थी। आय न के बराबर थी, इसलिये वह दूध बेचा करती। रोजमर्रा का खर्च निकल जाता था। जैसे-तैसे गुजारा कर रही थी।

जब कभी रुपये की सख्त जरूरत होती तो वह नायडू जी को खबर भिजवाती। बहुत मिन्नत के बाद पांच-दस रुपये मिल जाते। कहते हैं कि नायडू जी ने कभी उस पर रुपयों की वर्षा की थी। कांचना उन्हीं के घर तीन-चार साल रही भी। बाद में नायडू जी के घर में कोई झगड़ा हुआ और उसको अलग घर में रख दिया गया। नायडू जी आते-जाते रहते। उन्हीं के रुपयों पर घर का खर्च चलता।

दो

सड़क के किनारे वाले मकान के आखिरी हिस्से में सत्यं अपने पिता के साथ रहा करता था। वाद में एक खण्डहर था, एक नीम का पेड़, दो-तीन वेरी की झाड़ियाँ, फिर नलिनी का छोटा-सा घर।

नलिनी के घर के आंगन में दो भैंसें और एक गाय वँधती थी। एक कुआँ था। उस घर में दो ही प्राणी थे—नलिनी और उसकी माँ।

नलिनी का घराना वहुत पुराना है। उसके पुरखे कभी काफी मशहूर थे। अच्छी जमीन-जायदाद थी। अव उनकी हालत वही थी, जो शायद कोत्तपटनं के मन्दिर की थी—जीर्ण, शीर्ण, उपेक्षित, तिरस्कृत।

नलिनी की माँ, कांचना जवानी में प्रसिद्ध थी। दूर-दूर से लोग उसे देखने आया करते थे। विवाह आदि पर उसको वाजे-गाजे के साथ ले जाया करते। वड़े-वूढ़े अव भी उसके वारे में वातें किया करते हैं वह नर्तकी थी, उसका कुल निन्द्य था पर उसमें वही आकर्षण था, जो प्रायः एक निपिद्ध वस्तु में होता है।

उसके पूर्वज कभी कोत्तपटनं के मन्दिर में नाचा करते थे। उनको तव देवदासी कहा जाता था। अव भी वह मन्दिर में जाती है, नाचने के लिए नहीं, दो चार पुष्प भगवान पर चढ़ाने के लिए।

कांचना की उम्र चालीस-पैंतालीस की थी। जवानी कभी की उ चुकी थी। वसन्त हेमन्त के रूप में जम गया था। वह शरीर जो कभ

शमा की तरह जला होगा, आज एक राख के ढेर के समान था—मोटा, भारी, पोपला मुख, पान और तम्बाकू से रंगे दांत, मुँह पर सफेद-सफेद चकत्ते, जोड़ों में दर्द—वह यौवन की समाधि लगती थी।

शमा बुझ चुकी थी, परवाने भी न आते थे। जान-पहिचान वाला कभी मजाक-मखौल कर जाता और कांचना जोड़ों को मलती हुई, पान चबाती हुई, किवाड़ के सहारे घंटों बैठी रहती। कुछ सोचती, याद करती। कभी कभी नलिनी को संगीत सिखाती। इस तरह समय काटने का प्रयत्न करती।

रात भर दिया जलता। रह-रहकर कांचना को लगता, जैसे किसी ने किवाड़ खटखटाया हो। वह उठकर किवाड़ खोलने जाती, किसी को न पा आहें भरती। आठ-नौ बजे के करीब उठती। पुरानी आदत अब भी बरबस जारी थी। नलिनी उसकी इस बेबसी के बारे में बेखबर थी।

उम्र ढल गई थी। बीमारी में बहुत-कुछ रुपया समाप्त हो चुका था। जिन दिनों कमाई अधिक थी, खर्च भी ज्यादा था। दसियों रिश्तेदार, इधर—उधर के लोग हमेशा घर किसी-न-किसी बहाने पड़े रहते। बुजुर्गों की जमीन-जायदाद मां के जमाने में ही समाप्त हो चुकी थी।

अब हालत यह थी कि वह अपना पेशा निभा नहीं पाती थी। आय न के बराबर थी, इसलिये वह दूध बेचा करती। रोजमर्रा का खर्च निकल जाता था। जैसे-तैसे गुजारा कर रही थी।

जब कभी रुपये की सख्त जरूरत होती तो वह नायडू जी को खबर भिजवाती। बहुत मिन्नत के बाद पांच-दस रुपये मिल जाते। कहते हैं कि नायडू जी ने कभी उस पर रुपयों की वर्षा की थी। कांचना उन्हीं के घर तीन-चार साल रही भी। बाद में नायडू जी के घर में कोई झगड़ा हुआ और उसको अलग घर में रख दिया गया। नायडू जी आते-जाते रहते। उन्हीं के रुपयों पर घर का खर्च चलता।

दो

सड़क के किनारे वाले मकान के आखिरी हिस्से में सत्यं अपने पिता के साथ रहा करता था। वाद में एक खण्डहर था, एक ोम का पेड़, दो-तीन वेरी की झाड़ियाँ, फिर नलिनी का छोटा-सा घर।

नलिनी के घर के आंगन में दो भैंसें और एक गाय वँधती थी। ्क कुआँ था। उस घर में दो ही प्राणी थे—नलिनी और उसकी माँ।

नलिनी का घराना वहुत पुराना है। उसके पुरखे कभी काफी नशहूर थे। अच्छी जमीन-जायदाद थी। अव उनकी हालत वही थी, जो शायद कोत्तपटनं के मन्दिर की थी—जीर्ण, शीर्ण, उपेक्षित, तिरस्कृत।

नलिनी की माँ, कांचना जवानी में प्रसिद्ध थी। दूर-दूर से लोग उसे देखने आया करते थे। विवाह आदि पर उसको वाजे-गाजे के साथ ले जाया करते। वड़े-वूढ़े अव भी उसके वारे में वातें किया करते हैं। वह नर्तकी थी, उसका कुल निन्द्य था पर उसमें वही आकर्षण था, जो प्रायः एक निषिद्ध वस्तु में होता है।

उसके पूर्वज कभी कोत्तपटनं के मन्दिर में नाचा करते थे। उनको तव देवदासी कहा जाता था। अव भी वह मन्दिर में जाती है, नाचने के लिए नहीं, दो चार पुष्प भगवान पर चढ़ाने के लिए।

कांचना की उम्र चालीस-पैंतालीस की थी। जवानी कभी की जा चुकी थी। वसन्त हेमन्त के रूप में जम गया था। वह शरीर जो कभी

कभी-कभी मजदूरी भी करता। जब कुछ न मिलता तो आज किसी के घर से तो कल किसी और के घर से वह चावल लेकर काम चलाता।

"क्या कहा तूने, ? कह फिर !" पद्मनाभ मुक्का दिखाता हुआ पीछे की ओर मुड़ा।

नलिनी एक क्षण के लिए सहम गई। फिर थोड़ी देर बाद उसने उड़द की फलियों को खेत में फेंकते हुए कहा, "कम-से-कम मेरा बाप औरतों का काम तो नहीं करता है।"

पद्मनाभ की माँ गुजर चुकी थी। उसके पिता ने दूसरी शादी के लिए बहुत दौड़-धूप की, पर कोई अपनी लड़की देने के लिए तैयार न हुआ। लाचार हो वह अपना भोजन स्वयं पकाता।

पद्मनाभ यह सुनते ही गरमा गया। झट उसने नलिनी की पीठ पर दो-तीन मुक्के जमा दिए और बाँह पकड़कर उसे मारता जा रहा था। सत्यं थोड़ी देर तक तो चुप रहा, पर जब नलिनी थैला नीचे फेंक रोने लगी तो वह यकायक पद्मनाभ पर कूदा और उसका गला धर दबोचा। पद्मनाभ उससे अधिक ताकतवर था। दोनों में हाथापाई होने लगी। वे लड़ते-लड़ते खेत में चले गये। सीताराम को बीच-बचाव करना पड़ा।

"आखिर तेरी क्या होती है वह कि तुझे इतना जोश आ गया ?" पद्मनाभ पूछ रहा था।

"कुछ भी होती हो, तुझे मारने का क्या हक है ?" सत्यं ने पूछा।

"बताता हूं क्या हक है।" पद्मनाभ सीताराम का हाथ छुड़ाता हुआ आगे लपका। अपनी स्लेट लेकर सत्यं भी उसकी तरफ झपटा। पद्मनाभ ने उसके हाथ से स्लेट छीन ली और दूर फेंक दी। सत्यं के गाल पर पाँचों अंगुलियां छाप दीं।

"अब मालूम हुआ कि हक है कि नहीं ?" पद्मनाभ अपना बस्ता उठाकर चल दिया।

"घर चल, पता लग जायगा।" सत्यं मेड़ पर बैठकर रोता-रोता

हाथ और गाल पोंछने लगा। उसकी स्लेट उसके सामने टूटी पड़ी थी।

नलिनी सत्यं के पास बैठकर उसकी बिखरी पुस्तकों को इकट्ठा कर थैले में रखने लगी।

"रोओ मत भाई," नलिनी ने स्वयं आंसू पोंछते हुए कहा, "चलो, घर चलें।"

"कैसे चलूं ? पिताजी नाराज़ होंगे। किताबें फाड़ दी हैं उसने और स्लेट भी तोड़ दी है, कैसे जाऊँ ?" सत्यं मुँह पर हाथ रखकर सिसकने लगा।

"तुमने थोड़े ही फाड़ी हैं ? यह उस आवारागर्द की करतूत है। उठो भैया, उसकी शिकायत करेंगे। उसे जवाब देने तक की तमीज नहीं है। समझता क्या है ?" नलिनी उसको मनाने लगी।

सत्यं उठकर चल दिया, नलिनी उसके पीछे-पीछे आ रही थी। नलिनी के पूर्वज और सत्यं के पुरखे न जाने कितने वर्षों से पड़ोसी थे, पर आज ही वे एक-दूसरे को अच्छी तरह जान सके।

तीन

सत्यं के घर में तीन कमरे थे और उनके आगे-पीछे दो बरामदे। खपरैल की छत। पिछवाड़े में बड़ा दालान, अन्यथा वह बड़ा मकान खाली था, अस्तबल-सा लगता था। इस किनारे सत्यं और उसके पिता रहा करते थे और उस किनारे पंसारी सुब्बाराव की दुकान थी। बीच के कमरे खाली पड़े थे, आने-जाने वाले उनका धर्मशाला के रूप में उपयोग करते।

सत्यं के वंश का काफी पुराना इतिहास है। आठ-दस पीढ़ी पहले पुरखे कोत्तपटनं के राजा के दरबार में पुजारी का काम करते थे। कोत्तपटनं के मन्दिर को उसी राजा ने बनवाया था। कहते हैं कि प्राचीन मन्दिर के पास कभी उसका एक बड़ा महल था। अब वहाँ एक ऊँचे टीले के अतिरिक्त कुछ नहीं है।

सत्यं का परिवार जात-पात की दृष्टि से सर्वोच्च समझा जाता था। वे ब्राह्मण थे। सत्यं के पिता, अनन्तकृष्ण शर्मा भी परम्परागत रूप से कोत्तपटनं के मन्दिर में अब भी पुजारी हैं।

बाप-दादाओं के जमाने की अच्छी सम्पत्ति थी, पर निचाई का प्रबन्ध इतना अपर्याप्त था कि सिवाय झाड़-झंखाड़ के उनकी जमीन में कुछ न पैदा होता था। किसी-किसी साल मूँगफली की अच्छी फसल जरूर हो जाती थी। वे स्वयं कृषि न करते थे, इसलिए किसान की

जितनी मर्जी होती, उतना उन्हें दे जाता ।

पुजारी की वृत्ति से भले ही परलोक सुधर जाता हो पर इहलोक शायद नहीं सुधरता। सत्यं के पिता को अधिक आमदनी न थी पर वे सन्तुष्टजीवी थे, जैसे-तैसे गुज़ारा कर लेते थे। आसपास के गाँव में पौरोहित्य भी करते थे। दान-दक्षिणा में कपड़े वगैरह मिल जाते थे।

वे विधुर थे। सत्यं ने जब इस संसार में आँखें खोलीं तो उसकी माँ ने अपनी आँखें हमेशा के लिए बन्द कर लीं थीं। यह आठ-नौ साल पहले की बात है। बहुत दिनों तक तो उसकी कोख फली ही नहीं और जब फली तो वह अपनी सन्तान को भी न देख सकी।

सत्यं छुटपन में अपनी एक मौसी के यहाँ पला, जो कोडूर में रहती थी। अब वह भी गुज़र चुकी है। पिछले तीन वर्षों से पिता के यहाँ ही रह रहा है। पिता ही उसकी देख-भाल करते हैं। वे उसकी इस तरह परवरिश करते हैं मानों मां की मृत्यु के कारण उन पर अतिरिक्त जिम्मेवारी आ पड़ी हो। लोगों ने दुबारा शादी करने के लिए कहा। कई लड़की देने के लिए भी तैयार थे पर सत्यं के पिता ने विवाह करने से इन्कार कर दिया। उनका धर्मनिष्ठ जीवन था, साधु जीवन, वैरागी-से थे।

सवेरे-सवेरे ब्रह्ममुहूर्त में वे पूजा-पाठ करने मन्दिर चले जाते। सत्यं को भोजन खिला, पाठशाला भेज, वे अक्सर फिर मन्दिर चले जाते, अध्ययन करते। शाम को दीपाराधना करते, घर आकर सत्यं को थोड़ी देर पढ़ाते और सो जाते। यह उनका दैनिक कार्यक्रम था—घटना-हीन कार्यक्रम।

उनका घर प्रायः खाली रहता। घर में था भी बहुत-कुछ नहीं। दो-तीन बिस्तरे थे, कपड़े-लत्ते, बर्तन वगैरह। आंगन के एक कोने में वे वर्ष-भर के लिए धान गाड़ देते थे। शाक-सब्जी किसान दे जाते थे।

सत्यं का जीवन भी पिता की तरह था। वह भी पिता के साथ उठता, मन्दिर जाता, पूजा-पाठ करता। पाठशाला में पढ़ता-लिखता,

यन्त्र की तरह उसकी साधना चलती जाती थी। जब कभी त्योहार-उत्सव होते, वह भी और बच्चों के साथ खेल-खिलवाड़ करता, पर उसके बहुत साथी भी न थे। एकाकी जीवन था।

शाम को वह मन्दिर में बैठा रहता और मूर्तियों की नकल उतारता रहता। कभी-कभी चित्र बहुत अच्छे बन जाते थे। इसी में वह अपना मनोरंजन करता, नहीं तो अकेला समुद्र-तट की ओर टहलने निकल जाता।

परन्तु इधर जब से उसका परिचय नलिनी से हुआ था, उसके कार्य-क्रम में कुछ परिवर्तन आ गया था। उसने धीमे-धीमे मन्दिर जाना कम कर दिया। घर के पास वाले खण्डहर पर बैठ जाता, नलिनी भी चली आती। दोनों इधर-उधर दौड़ते, खेलते, कूदते। कभी-कभी सत्य नलिनी का चित्र बनाता और नलिनी उसे मिटा देती। गप्पें लगाते।

पिता ने एक बार पूछा, "क्यों बेटा, आजकल तुमने मन्दिर आना छोड़ दिया है ?"

"पढ़ने-लिखने का काम ज्यादा हो गया है। रहता हूँ पिताजी।" सत्य ने झूठ बोल दिया और झूठ बोलकर वह न जाने क्यों शर्मिन्दा न हुआ था। कभी पिता [illegible] स्नान को उनके साथ चला जाता और मन्दिर से घर की ओर देखता रहता।

मन्दिर के ऊँची जगह पर होने के कारण वहाँ से सत्य को अपना घर दिखाई देता था। नलिनी अकेली नारियल के नीचे बैठी रहती, रोड़े उठाती, अन्यमनस्क हो इधर-उधर फेंकती। सत्य उसको उदास देख वहाँ से सोचने लगता कि नलिनी [illegible] किया जाय।

उस गाँव में लड़के भी अधिक न थे और जो थे वे पद्मनाभ की टोली में थे। सत्य उनसे मिल न सकता था। शायद नलिनी ही एक ऐसी लड़की थी, जिसका घर [illegible] था। दोनों साथ-साथ खेलते, लड़ते, रूठ जाते [illegible] मान-मनौवल करते।

पेड़ पर चढ़ती-उतरती जब नलिनी कोई गीत गुनगुनाने लगती तो

सत्यं भी उसकी देखा-देखी कोई श्लोक गाने लगता। उसे श्लोक ही आते थे। जब खेतों में पानी होता तो वे घूम-फिरकर नहर के किनारे-किनारे अक्सर अंधेरा होने पर लौटते। आजकल सत्यं अक्सर देरी से घूम-फिरकर चक्कर लगाकर आया करता, नलिनी उसके साथ होती। पिता के सामने बहाने बनाया करता। उसका पिता विश्वास कर लेता।

सत्यं के पिता भले ही धनवान व ऐश्वर्यशाली न हों पर वे गाँव में प्रतिष्ठित थे। उनकी सब जगह पूछ होती थी। किसी घर में कुछ भी होता तो उनकी सलाह अक्सर ली जाती। होने को उनके विरोधी भी थे। वे कई लोगों की चिट्ठी-पत्री भी करते थे। गाँव वाले उनको सम्मान की दृष्टि से देखते थे।

चार

आज स्कूल का वार्षिकोत्सव था। कोट्टूर के छोटे कस्बे में यह एक बड़ी घटना थी। महीनों से तैयारी की जाती थी। उत्सव में कई संरक्षक उपस्थित थे, कई अभ्यागत भी थे। स्कूल के मैदान में रंग-बिरंगी झंडियाँ भी बँधी हुई थीं। काफी भीड़ थी।

सवेरे कोट्टूर के जमींदार साहब ने आकर भिन्न-भिन्न श्रेणियों में उत्तीर्ण सर्वोत्तम विद्यार्थियों को पारितोषिक वितरित किया था। सत्यं अपनी श्रेणी में सर्वोत्तम था। वह छठी में पढ़ रहा था। पद्मनाभ इस साल भी रह गया था। पर खेल-कूद में उसे भी इनाम दिया गया था, लम्बी दौड़ के लिए। वह भी खुश था।

शाम को मनोरंजन का कार्यक्रम था। मैदान में कामचलाऊ रंगमंच बना दिया गया था। उस पर चाँदनी-सी बिछी थी। लाल परदा खिंचा हुआ था। दर्शकगण में बातें चल रही थीं। कोट्टूर के जमींदार सपरिवार पहली पंक्ति में थे। उनके पीछे कस्बे के प्रतिष्ठित सज्जन और अध्यापक थे। इधर-उधर विद्यार्थी थे। सत्यं रंगमंच के एक तरफ शान्त उत्सुक बैठा था। उसी के पास पद्मनाभ का गुट था।

परदा उठा, एक नाटक खेला गया, जिसमें शिक्षा की आवश्यकता निरूपित की गई थी। नाटक अच्छा था। अभिनेता सब छोटे-छोटे बच्चे थे। बच्चों ने ही बड़ों का वेश बना रखा था। लोगों में खूब

देर तक तालियाँ वजती रहीं।

परदा दोवारा अभी हटा न था कि भीना-भीना संगीत आने लगा रंग-मंच पर हरी रोशनी डाली जा रही थी। धीमे-धीमे परदा हटा, संगीत के लय के साथ नाचते-नाचते मयूर ने प्रवेश किया। मुँह पर मयूर का आवरण था। वालों पर भी मयूर पंख। वह नाचता जाता था, जैसे कहीं घन-गर्जन हो रहा हो। सत्यं की आँखें मयूर पर गड़ी हुई थीं। नलिनी ही मयूर-नृत्य कर रही थी।

जव नाचती-नाचती नलिनी रंगमंच के मध्य में आई तो पद्मनाभ ने जोर से पूछा, "क्या मोरनी भी पंख फैलाकर नाचती है ?" उसकी टोली के सव नटखट ठट्ठा मारकर हंस पड़े। दर्शकों की दृष्टि उनकी तरफ एक वार गई, फिर वे यथापूर्व नृत्य का आनन्द लेने लगे।

"वेश्या की लड़की नाचेगी नहीं तो और क्या करेगी ?" अगल वगल के साथियों की वाँह पकड़कर पद्मनाभ ने मुँह वनाते हुए कहा।

सत्यं ने यह सुन लिया और वह तिलमला उठा, वह पद्मनाभ की ओर आँखें दिखाने लगा। वहुत दिनों से उसकी और पद्मनाभ की वातचीत वन्द थी।

"अरे जरा सँभलकर, भस्म हो जाओगे। शिवजी ने तीसरी आंख खोल दी है।" पद्मनाभ के साथी एक दूसरे को देखते हुए हँसने लगे। सत्यं उन्हें तरेर रहा था।

"अवे, अव ब्राह्मण भी आँख दिखाने लगे हैं।" सीताराम ने कहा। वह किसान घराने का था। उसके खानदान ने जस्टिस पार्टी में खूव काम किया था। ब्राह्मण के प्रति द्वेष उसकी धमनियों में प्रवाहित हो रहा था। यह उसकी एक वपौती-सी थी।

सत्यं अकेला था, होंठ समेटकर रंगमंच की ओर देखने का यत्न करने लगा। नलिनी का नृत्य अन्तिम चरण में था। संगीत में तेजी आ गई थी। मयूर पंख भी द्रुत गति से फड़कने लगे थे। पैरों में वही मन्थरता थी। वह नाचती-नाचती रंग-मंच के एक ओर चली

गई। दर्शकों में तुमुल करतल-ध्वनि हुई।

"यह कौन लड़की है?" ज़मींदार साहब ने पास वाले व्यक्ति से पूछा। वह शायद उसका खुशामदी यार था। उसने उनके कानमें फुस-फुसाया, "कांचना की लड़की है।" ज़मींदार भौहें चढ़ाकर इसी तरह देखने लगे, जैसे कुछ याद करने की कोशिश कर रहे हों। "जमना की बड़ी बहन, कांचना।" उनके यार ने दबी आवाज़ में कहा।

ज़मींदार मुस्कराये। तालियाँ अब भी बज रही थीं। वे भी और ज़ोर से तालियाँ बजाने लगे। जब तालियाँ बन्द हुईं तो उन्होंने अँगूठियों से लदी अँगुलियों को कुर्सी पर मारा औरा मूँछें मरोड़ने लगे। जमना उनकी रखैल थी।

काँचना रङ्गमंच के किनारे बैठी थी और नलिनी को देखकर फूली न समाती थी। उसी ने उसका साज-शृङ्गार किया था।

बाद में दो-चार गीत गाये गये। फिर पद्मनाभ मंच पर आया। उसके हाथ में चीथड़ों में बंधा एक डमरू था, लम्बा चोगा पहने हुए था। सिर पर पग्गड़, माथे पर लाल टीका। उसने गली-गली फिरने वाले ज्योतिषी का वेश बना रखा था।

"होने वाला है, होने वाला है—" वह उछल-उछलकर डमरू बजाता।

"बन रही है किसी की किस्मत—बन रही है।" डमरू बजाता और चारों तरफ देखता। लोगों ने हंसना शुरू कर दिया था।

"दो की किस्मत एक होने वाली है।" डमरू का शब्द।

"विवाह होने वाला है—होने वाला है।" वह निरन्तर डमरू बजाता जा रहा था।

"किसका?" उसकी टोली के लड़कों ने पूछा।

"नल-दमयन्ती का विवाह होगा, विवाह।" वह सत्यं की ओर देखता और डमरू बजाता जाता। उसके साथी सत्यं का कुरता पीछे से खींचने लगे।

"वसन्त होगा वसन्त। बादल आयेंगे, मोर नाच उठेंगे, मोर।" वह डमरू बजा-बजाकर नाचने लगा—नाच-नाचकर वह नलिनी का परिहास कर रहा था। पर लोग खूब हंस रहे थे।

कार्यक्रम समाप्त हुआ, परदा खींच दिया गया। कलाकार एक पंक्ति में रंगमंच पर खड़े हो गये। पद्मनाभ सबसे आगे था। वह 'जन गण मन' का राष्ट्रीय गीत गा रहा था। उसकी आवाज में गम्भीरता थी, माधुर्य, लहजा था। नलिनी उसकी ओर आश्चर्य से देख रही थी।

दर्शक तितर-बितर हो रहे थे। विद्यार्थी कुर्सियाँ उठाते जा रहे थे। रंगमंच के परदे वगैरह भी हटाये जा रहे थे। सत्यं धीमे-धीमे रंगमंच के पीछे पहुँचा। पद्मनाभ को देखते ही वह मुक्का बाँधकर लपका। उसने एक चपत जमाने की कोशिश की, पर पद्मनाभ ने उसका हाथ पकड़कर मरोड़ दिया। दोनों भिड़ पड़े। मुक्का-मुक्की होने लगी। पद्मनाभ सत्यं को नीचे गिराकर उसे रगड़ने लगा, सिर पटकने लगा। वहीं एक पत्थर था, वह सत्यं के कन्धे में चुभ गया। खून बहने लगा। बचे-खुचे लोग इकट्ठे हो गये। वे उन्हें डाँटने लगे। जब उनसे लड़ने का कारण पूछा गया तो किसी ने कुछ न कहा।

नलिनी भी भागी-भागी आई। उसकी माँ उसके साथ थी। सत्यं के कन्धे से खून बहता देख न जाने क्यों उसकी आँखों से आँसू बहने लगे।

कांचना ने कहा, "यह पद्मनाभ बड़ा आवारागर्द हो रहा है, जैसा बाप वैसा बेटा।"

"यह भी क्या अन्धेर है!" नलिनी ने काँपती हुई आवाज में कहा।

कांचना उसको अपनी बहन के घर ले गई। वहीं सत्यं का घाव उसने धोया। घाव बड़ा न था, खरोंच-सी थी। पर नलिनी इतनी घबराई हुई थी, जैसे कोई हड्डी ही टूट गई हो।

"यहीं सो जाओ।" नलिनी ने कहा।

सत्यं ने घर के इधर-उधर देखा। बड़ा घर था, चारों ओर बाग था। दो-चार नौकर भी। कमरे सजे हुए थे। खिड़कियों पर परदा था।

"नहीं, नहीं। मुझे जाना है, नहीं तो पिताजी खोजने निकल पड़ेंगे। खाना भी नहीं खायेंगे।"

"मैं आदमी भिजवाये देती हूं।"

"नहीं, नहीं। मुझे जाने दो।"

"क्यों बेटी, जाना चाहता है तो जाने दे, ज़िद क्यों करती है?" काँचना ने कहा।

"रात-भर की ही तो बात है, सवेरे हम भी चल देंगे।" नलिनी ने कहा।

"तुम जानती नहीं हो।" सत्यं घर के बाहर निकल पड़ा। नलिनी भी उसके साथ थी।

"आखिर तुम उसके साथ क्यों भिड़ पड़े थे?" नलिनी ने पूछा। सत्यं चुप रहा। नलिनी के फिर पूछने पर उसने कहा, "वह मेरा और तेरा अपमान कर रहा था, मैं सह न सका।" कहते-कहते सत्यं ने अपना कन्धा सीधा किया। बिना नलिनी की ओर देखे ही वह जल्दी से चला गया। उसका गला भर आया था।

चाँदनी थी, वह जल्दी ही घर पहुँच गया। पिता उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे। उसने उनसे कुछ भी न कहा। खा-पीकर करवटें लेता रहा, ठीक नींद न आई।

नलिनी भी अपना तकिया गीला करती रही।

पाँच

नीम के नीचे बैठा सत्यं कोयले के टुकड़े से एक पत्थर पर चित्र बना रहा था। चित्र में टीले पर एक मन्दिर था, आसपास झाड़-झंखाड़। मन्दिर कोत्तपटनं के मन्दिर के समान था, जो दूरी पर दिखाई देता था।

सत्यं को चित्र बनाने का शौक था। जब कभी थोड़ा समय मिलता, या तो वह ज़मीन पर ही कुछ बनाने लगता, या स्लेट पर कुछ खींचता। अपनी श्रेणी में वह चित्र बनाने में सर्वप्रथम था। इस विषय में उसको असाधारण प्रतिभा मिली थी।

शाम का समय था। सत्यं के पिता मन्दिर में थे। किसान खेतों से वापिस आ चुके थे। गाय-बैलों ने जो धूल सड़क पर उड़ाई थी, वह जम चुकी थी। कोत्तपटनं रात की विश्रान्ति के लिए तैयार होता-सा लगता था।

कुछ देर पहिले पद्मनाभ के पिता ने आकर किवाड़ खटखटाये, आवाज़ लगाई, पर सत्यं ने अनसुनी कर दी। वह उनके घर अक्सर नहीं आया करता था। न जाने क्यों आया था? सत्यं ने थोड़ी देर सोचने की कोशिश की। चाहे किसीलिए भी आया हो, सोचने से क्या फ़ायदा? यह निश्चय कर वह चित्र बनाने लगा।

नलिनी हाथ में बुहारी लेकर आंगन में आई। उसको नीम के

नीचे वैठा देखकर झाड़ू आंगन में फेंकी और खपरैल के ढेर के पास खड़ी होकर सत्यं को आने का संकेत करने लगी ।

"आजकल तुम क्या करती रहती हो दिन-भर ? पढ़ाई तो होती नहीं है ।" सत्यं ने पूछा ।

"पढ़ाई होती ही रहती तव ही अच्छा रहता, कम-से-कम इस चाकरी से तो वचती ।" नलिनी हाथ मलती-मलती इधर-उधर देखने लगी । फिर अंगूठे से जमीन कुरेदने लगी । उसके चेहरे पर प्रसन्नता नहीं थी, न वह चुलवुलापन ही, वह कुछ चिन्तित लगती थी-।

वार्षिकोत्सव के वाद स्कूल अवकाश के लिए वन्द कर दिया गया था । वे दोनों पहले की तरह मिल भी न पाते थे । जव स्कूल था, दोनों साथ जाते, साथ आते, वातें होतीं, हंसी-मखौल होता, मज़े में समय कट जाता । अव दोनों पर माँ-वाप की निगरानी थी, मनमानी न कर पाते थे । सत्यं के पिता रोज उसको मन्दिर ले जाते और मन्त्र रटवाते । नलिनी की मां भी उसको हमेशा काम में लगाये रहती, खुद तो हिल नहीं पाती थी, दरवाजे के पास हांफती-हांफती वैठी रहती । जव स्कूल था, तव नलिनी किसी के रोके भी न रुकती, भागी-भागी स्कूल चली जाती थी । रोज़ का चार मील का आना-जाना भी उसे न अखरता था और अव, जव उसको घर का काम करना पड़ता है तो वह कभी हाथ में दर्द का वहाना करती है, तो कभी कमर दर्द का ढोंग कर विस्तर पर लेट जाती है ।

"ऐसा भी क्या काम है, वैठो भी ।" सत्यं ने नलिनी की वाँह पकड़ते हुए कहा ।

"अगर वह वाहर आ गई तो चिल्ला-चिल्लाकर छत उठा देगी ।"

"पर आ सकेगी क्या ?—खैर चलने को तो हथिनी भी चल लेती है ।" सत्यं ने उसकी मां का परिहास किया ।

"क्या ?" नलिनी आँखें दिखाने लगी । फिर सत्यं के साथ, मुँह पर हाथ रख फूट-फूटकर हँसने लगी ।

"लगता है तुम्हें तुम्हारी मां वहुत प्यारी है ?"

होठ चपटे कर नलिनी ने रोनी-सी शक्ल वनाई। कोई उत्तर न दिया। वह यकायक ऐसी खड़ी हो गई जैसे कुछ कहने को आई हो और कहना भूल गई हो। "तुम्हारे कोडूर में कोई रिश्तेदार नहीं है ?" उसने थोड़ी देर वाद पूछा।

"नहीं तो—" सत्यं ने कहा।

"अरे अरे—" नलिनी कुछ कहती-कहती रुक गई, "तो क्या सारी छुट्टी-भर यहीं रहोगे ?"

"हाँ, क्यों ?"

"क्या वताऊँ ? कभी सोचती हूँ वार्षिकोत्सव के दिन अगर मैं न नाचती तो अच्छा होता—तुम वेकार उस नालायक पद्मनाभ से भिड़ पड़े। वाप भले ही उसका भीख मांगता हो पर गाँव के लड़के तो उसके इशारे पर नाचते हैं। उससे दुश्मनी कर गाँव में रहना ही मुश्किल है।"

"हटाओ उसकी वात·········अभी-अभी उसका वाप आया था, मैंने किवाड़ तक नहीं खोला। आखिर मुझे इन लड़कों से मतलब ही क्या है? मैं जैसा हूँ वैसा ही भला।"

"मगर, मगर···········"

"तुमने उस दिन गजव का नाच किया था, देखने वाले वाह वाह करते रह गये। ऐसा लगता है कि भगवान ने तुम्हें नाचने के लिए ही पैदा किया हो।"

"तभी तो मुसीवत आ पड़ी है।"

"क्या मुसीवत ?"

"मौसी रोज खवर भिजवा रही है। सुना है कोडूर के ज़मींदार को मेरा नाच वहुत पसन्द आया। वे चाहते हैं कि मैं नाचना सीखूँ। माँ भी उठते-बैठते, सोते-जागते यह ही दुहरा रही है। कहती है छुट्टी है, घर वैठे क्या करोगी ?"

"क्या तुम्हें नाचना पसन्द नहीं है, सीखना नहीं चाहतीं ?"

"मुझे गाना पसन्द है, अकेले बैठे संगीत गुनगुनाया जा सकता है। अकेला नाचा नहीं जा सकता।"

"क्या ऊटपटांग कह रही हो ? नाचना भी कोई गुनाह है ? जब भगवान के सामने नाचा जा सकता है तो मनुष्यों के सामने भी नाचा जा सकता है। पिता जी कभी-कभी सुनाते हैं कि उनके बाप-दादाओं के जमाने में हमारे मन्दिर में ऐसे नृत्य होते थे कि दूर-दूर के लोग जमा होते थे।"

"तो तुम भी कहते हो कि मैं नाचना सीखूँ।"

"हाँ, हाँ।"

"पर मुझे मौसी बिलकुल पसन्द नहीं है। मैं कोडूर नहीं जाना चाहती। तुम यहां रहो और मैं........." नलिनी कहती कहती रुक गई और सत्यं की झुकी पलकों को मुस्कराती हुई देखने लगी। "तो तुम भी चलोगे कोडूर ?"

"मैं कैसे जा सकता हूँ ?"

"तो मैं भी क्यों जाऊँ ? छुट्टियाँ इसलिए थोड़ी ही दी जाती हैं कि कुछ और सीखना शुरू कर दिया जाय ?"

"मैं भी सोच रहा हूँ कि मास्टर साहब के पास चित्र बनाना सीखूँ।"

"तो चलो, चलें।"

"पर वे कोडूर में नहीं हैं, घर चले गये हैं।"

"तो हम भी यहीं रहेंगे।"

"नहीं नहीं, पगली नहीं बनो।"

सत्यं उदास मन्दिर की ओर देखने लगा। अन्धेरा हो चला था। मन्दिर में दिये जलाये जा चुके थे। उसके पिता का घर आने का समय हो गया था।

"अच्छा तो यह बात है, इसीलिए ही मुँह सुजाकर आई थीं।"

नलिनी कुछ न बोली।

"कब जाओगी?"

"तुम भी कभी-कभी कोडूर आया करोगे?"

"कोशिश करूँगा।"

"यानी, तुम भी कहते हो कि मैं जाऊँ?"

सत्यं चुप रहा।

"जाना ही पड़ेगा नहीं तो मां और मौसी ज़िन्दा नहीं छोड़ेंगी, खैर। तुम······"

सत्यं मन्दिर की ओर देख रहा था।

"अरी बेटी नलिनी, तू क्या हुई?" घर के अन्दर से मां की आवाज़ आई।

नलिनी भागकर अपने घर के आँगन में चली गई और झाड़ लेकर बुहारने लगी। सत्यं नीम के नीचे चिन्तित बैठ गया।

छः

दो तीन वर्षों बाद, अवकाश के दिनों में, सत्यं और नलिनी कोडूर के पास वाले पुल पर खड़े थे। झुक-झुककर नीचे पानी में देख रहे थे। नहर का पानी वेग से बहता जाता था। पास ही एक छोटा-सा पेड़ों का झुरमुट था, फिर नहर के किनारे बड़े-बड़े पेड़ों की लम्बी पंक्ति।

तीन-चार बजे का समय था। नलिनी के हाथ में लोटा था। वह भयभीत-सी लगती थी, रह-रहकर खेतों से परे, कोडूर कस्बे को देख रही थी। उसकी मौसी के मकान की चारदीवारी, केले के पेड़, कीकर का वृक्ष—सब पुल की ऊँचाई से दीखते थे।

खेतों में धान लहलहा रहा था। मीलों तक हरियाली थी, बड़े-बड़े ताड़ के पेड़ रखवाली करते-से लगते थे। आस-पास कोई आदमी न था, चहल-पहल न थी, पुल सुनसान-सा लगता था। दूर नहर में जरूर किश्ती के बड़े-बड़े सफेद पाल दिखाई देते थे।

"तुम कैसे आये?" नलिनी ने आश्चर्य और सन्तोष से पूछा।

"यह भी कोई बड़ी बात है? तुम कैसे आईं?"

"आ तो गई पर ऐसा लगता है कि मौसी मुझे हजार आँखों से देख रही हो। भला आती कैसे न? तुमने इशारा जो किया था।"

"मैंने तुम्हें इशारा किया था?"

"नहीं किया था तो मैं चली जाती हूं।" आँखें घुमाती हुई, सिर हिलाती हुई नलिनी ने जाने का उपक्रम किया। वह दो-चार कदम गई भी, पर सत्यं ने कुछ न कहा। वह उसे घूरता रहा। नलिनी ने एक कदम और रखा, सत्यं ने आने का इशारा किया, नलिनी ने ध्यान न दिया। वह चलती गई। सत्यं ने पुकारा, "नलिनी!" नलिनी मुस्क-राती-मुस्कराती वापस चली आई।

"इशारा करने पर क्यों नहीं आई ?"

"मैंने सोचा कि तुम किसी और को इशारा कर रहे थे।" दोनों खिल-खिलाकर हँसने लगे। नलिनी ने लोटा पुल पर रखा और सत्यं की बगल में उछलकर पुल की मुंडेर पर बैठ गई।

"यह लोटा किसलिए लाई हो ?"

"वरना कैसे आ सकती थी ? मौसी ने कैद-सा कर रखा है। दिन-रात स, रि, ग, म और तक-धिन तक-धिन चलता रहता है—आराम भी नहीं लेने देती। तुम्हें आता देख शौच का बहाना किया और चली आई।"

"तुम्हें तो नाचने का शौक है, फिर क्यों ऊब रही हो ?"

"नाचने का शौक जरूर है पर मनमानी नाचने का, इस तरह मशीन की तरह नाचने का नहीं।"

"शायद कभी मशीन की तरह नाचना भी भाने लगेगा।"

"खैर, तुमने यह नहीं बताया कि तुम कैसे आये ?"

"मैंने पिताजी से कहा कि कागज चाहिए, उन्होंने कहा कि कोडूर से ले आओ।"

"हमारे घर के पास तो कागज नहीं बिकता ?" नलिनी हँसने लगी।

"कागज तो नहीं मिलता, पर चित्र ही मिल जाते हैं।" वह जोर से हँसने लगा और नलिनी नीची निगाह किये शरारत-भरी नजरों से उसकी ओर देखने लगी।

"पिताजी मन्दिर चले जाते हैं। घर में बैठे जी ऊब जाता है। शाम को तो दिल घुटने-सा लगता है। बस, इसी नहर के किनारे-किनारे घूमने निकल जाता हूं। कोत्तपटनं से तीन-चार मील दूर, जहाँ यह नदी समुद्र में गिरती है, बड़ा सुहावना दृश्य है, कभी चलेंगे।"

"मैं तो सोच रही थी कि जब मैं वापस कोत्तपटनं आऊँगी तो आँगन में कुत्ते, बिल्ली, बन्दर, सब मेरा स्वागत करेंगे और तुम नहर के किनारे मटरगश्ती कर रहे हो।"

"तुम्हारा मतलब ?"

"नहीं समझे ? मैं इस ख्याल में थी कि आँगन में तुमने अब तक न जाने कितनी ही बिल्ली, बन्दर की तस्वीरें बना दी होंगी।"

"अगर तुम बिल्ली हो तो तुम्हें वहाँ तुम्हारी तस्वीर दिखाई देगी।"

"हूं !" वह थोड़ी देर चुप रही। "अगर मैं यहाँ नाच सीखने आई हूं तो यह सोचकर कि तुम चित्र बनाना सीखोगे। मुझे चित्र बहुत पसन्द आते हैं।"

"और शायद चित्रकार नहीं।"

"हटो भी।" वे एक-दूसरे की ओर देखते रहे। शायद उनके मन में कई बातें उठ रही थीं। बहुत-कुछ कहने सुनने की सोची थी, पर वे चुप खड़े थे। सत्यं शरमाया-सा था। कभी वह नीचे देखता तो कभी नलिनी के चेहरे पर। नलिनी की भी यही हालत थी, कभी वह लोटा माँजती, कभी सत्यं को निहारती।

"अच्छा मैं जाती हूं।"

"चली जाना, ऐसी कौनसी जल्दी है ?"

"मौसी नौकरानी को भेज देगी, बेकार का शोर-शराबा।"

"क्या तुम्हारी माँ नहीं जानती कि तुम मुझसे मिलती-जुलती हो ?"

"नहीं तो। उसके लिए तो हिलना-जुलना भी मुश्किल हो रहा है। क्या तुम्हारे पिताजी को नहीं मालूम ?"

"शायद मालूम नहीं है।"

नलिनी जाने को तैयार थी कि पद्मनाभ के पिता, वापिनीडु को सिर पर बोरा लादे सामने से आता देख, न जाने क्यों वह सहम गई। वह सत्यं की बगल में खड़ी हो गई।

वापिनीडु पुल पर आया। वह सत्यं को देखकर बोला, "क्यों शर्मा, आज यहाँ क्या कर रहे हो? चलते हो गाँव? अरे, यह लड़की?" उसने अचरज से उन दोनों की तरफ देखा। बोरा मुंडेर पर रख वह आराम करने लगा।

"आजकल तो स्कूल नहीं है, अब भी क्या तुम कोडूर आते-जाते रहते हो?"

"काम रहता है तो आ जाता हूँ, तुझे क्या?"

"मुझे तो कुछ नहीं है, मैंने यों ही पूछा था........शायद अकेले ही आते हो?" वह नलिनी की ओर घूरने लगा।

उनमें से कोई न बोला। थोड़ी देर बाद वापिनीडु बीड़ी सुलगाकर चला गया। नलिनी को न सूझा कि क्या करे। वह जानती थी कि वापिनीडु चुगली करने में पहुँचा हुआ है। औरतों की सी आदत, आवाज।

इतने में दूर की किश्ती भी पाल फैलाए पुल के पास आ गई। पाल नीचे उतारे जा रहे थे। सीताराम किश्ती की छत पर बैठा था और पद्मनाभ लहरों को देखता-देखता जोर से गा रहा था। उसकी आवाज में अजीब मस्ती थी। नलिनी ने किश्ती को देखा और मुंडेर की आड़ में छिप गई।

नीचे किश्ती में सीताराम पद्मनाभ को संकेत कर पुल पर खड़े हुए सत्यं को दिखा रहा था। जब किश्ती पुल पार कर कुछ दूरी पर गई तो नलिनी खड़ी हो गई। पद्मनाभ किश्ती पर खड़ा-खड़ा ताली बजा-बजा कर कुछ गा रहा था। उसने उन दोनों को देख लिया था।

नलिनी लोटा लेकर चली गई। सत्यं ने उसे रोका भी नहीं।

कर पुल की मुंडेर पर बैठ गया और नलिनी को हरे खेतों में से जाता खने लगा।

जब वह घर पहुँचा तो अंधेरा हो चुका था। पिता उसकी प्रतीक्षा र रहे थे।

"कागज़ मिल गये न ? अंधेरा होने से पहले आते तो अच्छा होता। रास्ता खराब है।"

"आपने भोजन कर लिया है ?"

"नहीं तो, नहा-धो आओ, खायेंगे।"

सत्यं मन-ही-मन खुश होता नहाने गया, पर जब वह नीम के पेड़ के पास गया तो पत्थर पर नलिनी का चित्र मिटा हुआ था। वह कभी बापिनीडु के बारे में सोचता, कभी पद्मनाभ के बारे में। इसी सोच-विचार में उसने अपना खाना निगल लिया।

खाना खाने के बाद पिता ने उसको अपने साथ बरामदे में बिठा लिया। पिता सुपारी चबा रहे थे और सत्यं नलिनी के खाली घर की ओर देख रहा था।

"बेटा, तुम बड़े हो रहे हो। ब्राह्मणकुल में पैदा हुए हो। नीच कुल की लड़कियों के साथ घूमना फिरना अच्छा नहीं है।"

सत्यं होठों पर अंगुली रख कर पिता की ओर देखने लगा। क्या जवाब देता ? वह चुप रहा और बापिनीडु को कोसने लगा।

"खैर, अब सो जाओ, देखा जायगा।" उसके पिता ने कहा।

सात

सवेरे-सवरे सत्यं मन्दिर की ओर जा रहा था। पिता की आज्ञा थी। ज्यों ही वह पद्मनाभ के घर के पास पहुँचा तो वह बाहर निकल कर कहने लगा……"बिल्ली चली हज को" और तालियाँ पीटने लगा। उसके साथी जमा हो गये। सत्यं के पीछे हो-हल्ला करने लगे। सत्यं मुँह नीचा कर चलता जाता था। यह उसके लिए नया अनुभव था।

पद्मनाभ से उसकी न बनती थी। पर न जाने क्यों कोत्तपटनं के सारे लड़के उस पर बिगड़े हुए थे। घुल-मिलकर रहने का उसका स्वभाव न था। एकाकीपन ही उसको भाता था। इसलिए उसको यह समझ नहीं आता था कि जब वह किसी का कुछ नहीं करता है तो क्यों लोग उसके पीछे पड़ जाते हैं? पद्मनाभ की अच्छी बड़ी टोली थी—उसके इशारे पर गाँव के खेत तहस-नहस कर दिये जाते थे, मछली चुराई जाती थी, त्योहारों पर चोरी होती थी, बड़ों की टोपी उछलती थी, पर कोई भी उसका कुछ न करता था। यह सब सत्यं के लिए पहेली थी।

वह आगे चलता जाता था और पद्मनाभ की टोली पीछे-पीछे घर की स्त्रियाँ देखतीं और मुस्कराकर चली जातीं, कोई बड़ा आदमी पास से गुजरता तो टोली ऐसे चुप हो जाती मानों भक्ति पूर्वक मन्दिर में पूजा करने के लिए जा रही हो।

मन्दिर पास आ गया था। सत्यं नहीं चाहता था कि टोली उसका पीछा करती हुई मन्दिर में भी पहुँचे और वहाँ उसके पिता के सामने चुगली-शिकायत करे। वह वहीं सीढ़ियों पर बैठ गया और लड़के भी वहीं बैठ गये।

"काफी पाप किये हैं, हो आओ मन्दिर में।" सीताराम ने कहा।

"ब्राह्मण है, ब्राह्मण, घर में किसी को पानी भी नहीं देते और बातें होती हैं मालूम है किससे ?" पद्मनाभ ने छेड़ा।

"अबे ब्राह्मण है, कम-से-कम ब्राह्मण की इज़्ज़त तो रखता।" सुब्बाराव ने कहा। सुब्बाराव पद्मनाभ के ताऊ का लड़का था। पढ़ाई छोड़े काफी दिन हो गये थे। कोई काम न था। पद्मनाभ के साथ वह भी आवारागर्दी करता था।

"तुम भी क्या हो भैया ? क्या कोई शक्ल सूरत से ब्राह्मण हुआ करता है ?" पद्मनाभ ने ताना दिया।

"अरे, ऐसा-वैसा ब्राह्मण भी नहीं, पुजारी का लौण्डा है।" सूर्य-नारायण ने कहा। सूर्यनारायण सत्यं का सहपाठी था, कभी अच्छा मित्र भी था। वह पढ़ाई-लिखाई में भी तेज था। अवकाश के दिनों में वह टोली में शामिल हो गया था। सत्यं ने एक बार उसकी तरफ तीखी नजर से देखा। उसकी आँखों में आँसू झलकने लगे। गुस्से के कारण उसका सारा बदन काँप रहा था।

"अरे, बेचारे को छेड़ो मत।" सुब्बाराव ने कहा।

"आजकल तो पुल पर छुप-छुपकर बातें होती हैं। पर हम भी कोई किसी से कम नहीं।" पद्मनाभ ने कहा।

"किससे ?" सुब्बाराव ने पूछा।

"और किससे ? इससे बातें करेगा कौन ? वही नलिनी···"

सत्यं की आँखों से आँसू छलक पड़े, वह अधिक न सह सका। वह पद्मनाभ पर कूद पड़ा। उसका कूदना था कि पद्मनाभ ने धड़ाधड़ चपत बरसाने शुरु किये। शोर बढ़ा, सुब्बाराव बीच बचाव करने लगा।

शोर सुनकर सत्यं के पिता ऊपर मन्दिर के चबूतरे पर आये, सत्यं को नीचे देख वे झटपट नीचे उतरने लगे। उन्हें उतरता देख पद्मनाभ की टोली नौ दो ग्यारह हो गई।

पिता ने बहुत पूछा कि क्यों पद्मनाभ वगैरह उसे तंग कर रहे थे। पर सत्यं कुछ न बोला। पिता ने आँखें दिखाईं, तब भी उसने कुछ न कहा, मन्दिर के मण्डप में एक खम्भे के सहारे बैठ गया। उसके हृदय में यह ख्याल आया कि वह नलिनी से नहीं बोलेगा। उसी के कारण उसकी बदनामी हो रही थी। लोग छेड़ रहे थे। इसी तरह के ख्याल उसके मन में चक्कर काटते जाते थे।

थोड़ी देर बाद वह मन्दिर के पिछवाड़े में जा बैठा। समुद्र की ओर देखने लगा। सूर्य निकल चुका था, और लहरों पर चांदी की परत-सी लग गई थी। वह अकेला काफी देर तक बैठा रहा। पत्थर पर दो-तीन बार चित्र बनाने की उसने कोशिश की, पर कुछ बन न पाया। पत्थर साफ कर वह इधर-उधर देखता जाता था।

उसके विचारों ने एक और करवट ली, "इनको मुझे छेड़ने का
या हक है ? अगर ये छेड़ते हैं, तो इसमें नलिनी का क्या कसूर ? वह
श्या की लड़की है, होगी। इसमें भी उसका क्या दोष ? मैं ब्राह्मण
, तो क्या मुझे एक ऐसी लड़की से भी बात न करनी चाहिए जो
री मदद करती है ? नलिनी से बातें न करूँ तो क्या इन चपाटों से
ूँ ? नहीं।"

वह वहाँ से उठकर मन्दिर में चला गया। उसके पिता जाने की
री कर रहे थे। उसको देखकर वे कुछ भी न बोले, वे कुछ सोचते-
गते थे।

जल्दी खाना खाकर सत्यं के पिता आदिनारायण जी से मिलने चले
सत्यं घर में ही लेटा रहा। दीवार पर देखता-देखता कभी मुस्क-
कभी होंठ मींचता। वह सोच रहा था, "देखें ये कितना छेड़ते हैं ?
न सुनूँगा, ये होते कौन हैं ?" यह ही सोचते-सोचते वह सो गया।

दो-तीन वजे वह उठा। कन्धे पर थैला डाला, वाहर निकला। सड़क पर गया ही था कि उसके पिता आ गये।

"कहाँ जा रहे हो ?" उन्होंने पूछा।

"कोडूर।"

"किसलिए ?"

"शाक सब्जी लाने के लिये।"

"कोई जरूरत नहीं है।"

वे घर के अन्दर आकर वैठ गये। सत्यं भी आँगन में चला गया। वह निराश था। वह अपनी जिद से पिता को तंग करना न चाहता था। उनकी आज्ञा के वगैर वह कोडूर जा भी न सकता था।

थोड़ी देर वाद पद्मनाभ का पिता आकर अनन्तकृष्ण शर्मा के सामने अपना दुखड़ा रोने लगा। सत्यं किवाड़ की ओट में खड़ा कान देकर सुन रहा था।

"कृपा कीजिए, आप आदिनारायण जी से कहिये। मेरा घर-वार वचाइये। आप ही का सहारा है।" पद्मनाभ का पिता गिड़गिड़ा रहा था।

"तो तुम अपने लड़के को कावू में क्यों नहीं रखते हो ?..."

"वड़ा हो गया है, माँ भी नहीं है, अगर वह आज होती।" उसका गला रुंध गया, "वह विगड़ गया है। क्या करूं पंडित जी ? मगर वह अव से कुछ न करेगा। घर में वाँध दूँगा।"

"अच्छा जा, आदिनारायण जी से कह दूँगा।" सत्यं के पिता ने कहा।

आदिनारायण कोत्तपटनं के वड़े किसान थे। सौ-डेढ़-सौ एकड़ जमीन थी। गाँव के मुखिया थे। प्रतिष्ठित व्यक्ति थे। उन्हीं की जमीन पर पद्मनाभ का पिता काम करता था। आदिनारायण जी अनन्तकृष्ण शर्मा के अच्छे मित्र थे, साथ पड़े थे, जमाने से, पीढ़ी-दर-पीढ़ी दोनों परिवारों में दोस्ती चली आती थी।

सत्यं के पिता ने पद्मनाभ के कारनामों की खबर उनके कान तक पहुँचा दी थी और आदिनारायण जी ने उसके पिता को धमकी दी थी कि अगर पद्मनाभ न सुधरा तो वे उसको गाँव में न रहने देंगे। आखिर सूखे, दुबले, पतले पेड़ को तोड़ने में कितनी देर लगती है? पद्मनाभ के पिता की हालत इससे कोई बेहतर न थी।

जब सत्यं बरामदे में बिस्तर बिछा रहा था तो सीताराम और उसके साथी सड़क पर जा रहे थे। "अरे, पद्मनाभ की अच्छी मरम्मत हो रही है। उसका पिता उसे धुन रहा है।"

सत्यं एक क्षण तक स्तब्ध खड़ा रहा।

आठ

"देखना, इधर-उधर न घूमना।" सत्यं के पिता मन्दिर जाते-जाते उसको हिदायत कर रहे थे। अभी पूरी तरह पौ भी न फटी थी। अनन्तकृष्ण शर्मा आज रोज़ की अपेक्षा पहले ही उठ गये थे। शायद रात को ठीक तरह सो नहीं पाये थे।

आजकल वे कुछ चिन्तित रहते। उनके जान-पहचान वाले अक्सर सत्यं के बारे में शिकायत करते। आदिनारायण ने भी कहा, "क्यों नहीं लड़के को लगाम में रखते हो?" वे कुछ जवाब नहीं दे पाये थे। दिन-रात चिन्ता में रहते, सत्यं से भी कुछ न कह पाते थे। इकलौता लड़का, माँ भी न थी। बढ़ती उम्र। साफ-साफ कहने पर हो सकता है कि वह बोरिया-बिस्तर बाँधकर कहीं चला जाय। और अगर सत्यं यह पूछ बैठता, "जब एक ब्राह्मण का लड़का एक ब्राह्मण की लड़की के साथ बातचीत कर सकता है तो क्यों नहीं वह और जाति की लड़की से बात कर सकता?" इसका उनके पास कोई उत्तर न था।

सत्यं जीवन की एक विचित्र अवस्था में गुज़र रहा था। उसकी बुद्धि प्रखर थी। श्रद्धा की मात्रा कम हो रही थी और विद्रोह की भावना अधिक। ये सब उम्र के साथ होने वाले मनोवैज्ञानिक परिवर्तन हैं, उसके पिता भी यह समझते थे। शायद उनका भी यही अनुभव था। गदह-पचीसी में उन्होंने भी कम आवारागर्दी न की थी। इधर पत्नी की मौत

के बाद ही वे एकदम वैरागी-से हो गये थे।

पर जान-बूझकर वे सत्यं को गलत रास्ते पर कैसे जाने देते? उन्होंने उसे न डाँटा न डपटा, परन्तु उसके इधर-उधर घूमने-फिरने पर पाबन्दी लगा दी। स्वयं वे उसके लिए पुस्तकें, रंग रोली, कागज वगैरह लाते, ताकि वह पढ़ने-पढ़ाने में मस्त रहे और नलिनी को भूल-भाल जाय।

सत्यं कई दिनों से नलिनी से न मिला था, उसे कोडूर तक भी न जाने दिया गया। उसने कई बहाने सोचे, पर पिता की नज़र बचाकर चले जाना उसके लिए मुश्किल हो गया।

कहते हैं, यदि मैत्री को विद्रोह का स्नेह मिल जाय तो वह और गहरी हो जाती है, अगर मैत्री के लिए बलिदान करना पड़ जाय तो मित्र भी सहोदर-से हो जाते हैं।

नलिनी ने भी कई दिनों से सत्यं को नहीं देखा था। वह व्याकुल थी। वह जानती थी कि सत्यं पर कड़ी पाबन्दी लगा दी गई होगी।

आखिर उसे एक उपाय सूझा। उसने अपनी मौसी के नौकर को सत्यं के घर यह कहकर भेज दिया कि वह उसके पिता से कहे कि सत्यं को ड्रॉइंग-मास्टर जी बुला रहे हैं। यह सच था कि ड्रॉइंग-मास्टर कभी-कभी सत्यं को बुलाया करते थे, इसलिए सत्यं के पिता तुरन्त मान गये। पर शायद उनको भी शक था, इसलिए हिदायत कर रहे थे "इधर-उधर न फिरना।"

पुल के पास ही वह नौकर सत्यं को मिल गया। पर सत्यं ने जिद पकड़ी कि पहले वह मास्टरजी को देखेगा फिर नलिनी के पास आयेगा। उसे डर था कहीं उसके पिता मास्टरजी से न पूछ लें और उसकी पोल खुल जाय।

जब वह नलिनी के घर के पास पहुँचा तो नलिनी दुमंजिले पर खड़ी उसकी इन्तज़ार कर रही थी। बड़ा मकान था। सत्यं सीधा मकान के फाटक के पास गया, फिर न जाने उसे क्या सूझा कि वह पास वाले

पर जा बैठा। नलिनी बरामदे में न थी, उसे क्या मालूम कि सत्यं पन्द्रह-बीस मिनट में ही वापस आ जायगा।

सत्यं वहाँ से चला गया। अपने स्कूल के पास मटरगश्ती करने लगा। उसे कुछ सूझ न रहा था। उसके कई सहपाठी कोडूर में थे, पर वह किसी के पास न गया। जब थक गया तो एक होटल में बैठ गया।

शाम होते-होते वह पान की दुकान पर पहुँचा। नलिनी की मौसी के मकान के सामने एक बड़ी घोड़ागाड़ी थी। फाटक के आसपास दो आदमी वरदी पहने खड़े थे। एक क्षण सत्यं ने जाने की सोची, पर कुतूहलवश वहीं खड़ा हो गया।

नलिनी सीढ़ियों के पास खड़ी थी। उसने भी सत्यं को ठहरने का संकेत किया। थोड़ी देर में उसकी मौसी सजी-धजी बाहर निकली, साथ नलिनी भी थी। उसकी मौसी गाड़ी में बैठकर चली गई और लोग भी अन्दर चले गये।

नलिनी और सत्यं बाहर खड़े थे। नलिनी ने लंहगे में से दो-तीन नई पेन्सिलें निकालकर सत्यं के हाथ में रख दीं। उसकी निगाहें नीची थीं। वह शायद सोच रहा था कि पेन्सिलें ले कि नहीं। फिर यकायक बिना कुछ कहे वह चला गया।

नौ

समस्या-समस्या ही है, छोटी हो या बड़ी, बच्चों की हो या बूढ़ों की। नलिनी के सामने समस्या थी। कुछ दिनों से वह चिन्तित थी।

उसकी माँ चाहती थी कि नलिनी कोइर में रहे और नाच सीखे। उसने अपनी चाह किसी से छिपा भी न रखी थी। वह यहाँ तक कहती थी, "पढ़-लिखकर क्या करेगी? न अपना कारोबार कर सकेगी। न किसी के नीचे नौकरी ही।" अगर नलिनी कुछ कहती-कहाती तो झट बताती, "अरी पगली, नाचना-गाना भी विद्या है, कला है। यह कोई जरूरी है कि किताबें ही रटती रहो, यही कला हम सब सीखती आई हैं।"

नलिनी चुप हो जाती। वह न कोनपटन छोड़ना चाहती थी, न पढ़ाई-लिखाई ही। वह अपने छोटे-से जीवन में सबसे अधिक आनन्द-मय वे क्षण मानती थी, जो उसने खेत की मेड़ों पर सत्यं के साथ चलते-चलते काटे थे। दोनों का मिलकर स्कूल जाना और वापस आना उसके जीवन का शायद एक आवश्यक अंग हो गया था। वह उस आनन्द से वंचित होना न चाहती थी।

वह मुँह सुजाये बैठी थी और पास वाले कमरे में उसकी माँ और मौसी बातें कर रही थीं।

"जमींदार साहब कह रहे थे कि नलिनी को नाच-गाना सिखाया जाय। न जाने ज़मींदार साहब क्यों नलिनी का नाच इतना पसन्द करने लगे हैं ?" मौसी कहती-कहती सहसा रुकी, बहन को ध्यान से घूरता देख बोली, "क्यों न करें, बहुत अच्छा नाचती जो है।"

"हाँ हाँ, मैं भी यही चाहती हूँ कि नलिनी यहीं नाचना सीखे। कोत्तपटनं तो अब उजड़ गया है, बाप दादाओं के जमाने में और बात थी। तब लोग कोत्तपटनं नाच-गाना सीखने आते थे। अब किस्सा कुछ और है, न वहाँ कोई सीखने वाला है न सिखाने वाला ही। अपने लोग भी शादी कर घर-बार चलाने लगे हैं। न जाने क्या ज़माना आ गया है।" कांचना ने कहा।

"पर……पर…… ?" कहती-कहती मौसी आँगन में चली गई। वह कहना चाहती थी कुछ, पर यह न सोच पाई थी कि कैसे कहे, उसके 'पर, पर' का नलिनी और ही अर्थ निकाल रही थी। उसने यह सोचा कि मौसी यह नहीं चाहती थी कि वह पढ़ाई-लिखाई छोड़ दे। वह माँ की नजर बचाकर दूसरे दरवाजे से आँगन में चली गई। उसकी मौसी अन्यमनस्क-सी खड़ी थी। उसने मौसी की बाँह पकड़कर कहा, "मौसी, आज शुक्रवार है। कोत्तपटनं के मन्दिर में भजन होगा। वहाँ गये हुये भी बहुत दिन हो गये हैं।"

"तू पढ़ना चाहती है न ?" मौसी ने पूछा।

"हाँ, हाँ, मौसी, तुम माँ से कहो न कि मेरी पढ़ाई-लिखाई न बन्द करे ? कहो भी मौसी, मैं स्कूल छोड़ना नहीं चाहती।"

"तो क्या तुम नाचना गाना नहीं सीखना चाहती ?"

"हाँ, हाँ, उसके लिए पढ़ाई छोड़ना तो जरूरी नहीं।"

"तू कोत्तपटनं जायगी कैसे ?"

"रामुडु के साथ।"

"जा।"

नलिनी खुशी-खुशी अपने कमरे में चली गई, जैसे मैदान मार

लिया हो। कपड़े वदलने लगी। उसका छोटा-सा मन उसकी मौसी की ईर्ष्या को न समझा सका।

उसकी मौसी ढलती जवानी में थी। प्रौढ़ा। वह वहुत भटकी। आखिर वह ज़मींदार साहव की नज़र में आई। दो-तीन साल से वह उनके साथ है। काफी पैसा भी कमा लिया है, पर कमाई का नशा भी अजीव है···शरावी की प्यास-सी, जो कभी नहीं वुझती। वह इधर-उधर से भी कमा लेती थी। उसे किसी चीज़की कमी न थी।

पर, अव ज़मींदार की नज़र नलिनी पर थी। दो-तीन साल में वह वड़ी हो जायगी, फिर शायद ज़मींदार साहव उसको पूछे भी न—यह भय, सन्देह उसके मन में घर कर गया था। अय्याशों का क्या कहना? जव शिकारी शिकार करने निकलता है, तो यह नहीं सोचता कि शिकार वड़ा है या छोटा। वासना में विवेचन की शक्ति नहीं होती।

शायद इसी वजह से जमना यह न चाहती थी कि नलिनी या उसकी माँ कोडूर में रहे और धीमे-धीमे उसका काम चौपट कर दें। पर वह यह उनसे कह न पाती थी। अगर ज़मींदार साहव खुद नलिनी को नाच सिखाने का प्रवन्ध न करते तो वह शायद नलिनी को कोडूर वुलाती भी न। यह उसकी समस्या थी।

जमना जाकर अपनी वहन के पास वैठ गई। इतने में नलिनी भी कपड़े वदलकर वहाँ आ पहुँची, "कहाँ जा रही हो वेटी?" उसकी माँ ने पूछा।

"कोत्तपटनं जा रही है। आज शुक्रवार है, मन्दिर में भजन होगा। वहाँ गये वहुत दिन भी हो गये हैं।" नलिनी की मौसी ने जवाव दिया।

"पर···पर···" कांचना हिचकिचाने लगी।

"मैंने ही जाने के लिए कहा है। रामुडु साथ जा रहा है।"

वाहर घोड़ागाड़ी थी, नलिनी के वैठती ही कोचवान ने गाड़ी चलादी। नलिनी ने अपनी माँ को कोई उत्तर न दिया। इधर उसकी मौसी उसकी माँ से कह रही थी, "नलिनी तो पढ़ना-लिखना चाहती

नहीं है।"

"पढ़ाई-लिखाई में रखा क्या है ? बेकार समय बरबाद होता है।" कांचना ने कहा।

"जब वह नाचना न सीखना चाहे तो क्या सीखेगी ? जबरदस्ती करने से क्या फायदा ?"

"जबरदस्ती क्या है ? जमींदार साहब भी तो यही चाहते हैं।"

जमना एक क्षरण चुप रही, फिर उसने अपनी बहन की तरफ इस तरह घूरा जैसे वह कोई चाल चल रही हो और वह ताड़ गई हो।

"छुट्टियों में नाचना सीखा करे और बाकी समय स्कूल जाया करे, इस तरह पढ़ाई-लिखाई भी होगी और नाचना भी सीख जायगी।"

"तो तेरी भी यही राय है ?" कांचना ने पूछा।

"हाँ।"

नलिनी की माँ कुछ न बोली। वह दिल मसोसकर रह गई। उसे मालूम था कि कब चुप रहने में भला है, कब बातें करने में। यद्यपि वह आदतन बातूनी थी, उसने चुप्पी साध ली।

मन्दिर में पूजा चल रही थी। अनन्तकृष्ण शर्मा पूजा कर रहे थे। पाँच-छः स्त्रियाँ बैठी थीं। एक आदमी भी था, जो किसी दूसरे गाँव से आया लगता था। बड़ा मण्डप लगभग खाली ही था।

नलिनी नीचे सीढ़ियों पर ही थी। रामुडु मन्दिर में जाकर सत्यं को नीचे बुला लाया। उसके पिता पूजा पाठ में मस्त थे।

"नलिनी, क्यों, क्या बात है ?" सत्यं ने हड़बड़ाते हुए पूछा, जैसे नलिनी बेमौके आ गई हो।

"मैं नाचना नहीं सीखना चाहती," नलिनी ने बिना किसी भूमिका के कहा।

"नाचना कला है, तुम्हें नहीं छोड़ना चाहिए।"

"माँ ने स्कूल छुड़वाने की जिद पकड़ रखी है।"

"स्कूल भी नहीं छोड़ना चाहिए, कोई उपाय सोचेंगे। फिक्र न

करो। मैं जाता हूं, नहीं तो पिताजी खोजते-खोजते आ जायेंगे। बाद में मिलूँगा।" वह चला गया।

रामुड़ु के कहने पर वह थोड़ी देर बाद उसके साथ मन्दिर में जाकर बैठ गई। पूजा खतम हो चुकी थी और सत्यं के पिता प्रवचन कर रहे थे। उन्होंने नलिनी की तरफ देखा फिर सत्यं की ओर। उसको नीचे मुँह किया देख वे और उत्साह से बोलने लगे। सत्यं ने एक बार भी नज़र उठाकर नलिनी की ओर न देखा।

प्रवचन समाप्त हुआ। सब चले गए—नलिनी और रामुड़ु भी। अनन्तकृष्ण शर्मा बहुत दिनों बाद पुत्र की ओर देखकर मुस्करा रहे थे। वह शायद उनकी नजर में 'आज्ञाकारी पुत्र' की उपाधि का अधिकारी था।

कोत्तपटनं की शरारती टोली पद्मनाभ की अनुपस्थिति में कुछ सुधरती-सी लगती थी। सीताराम अब उनका सरदार था। वह पद्मनाभ की सोहबत में विगड़ गया था। भले घर का था, पढ़ाई में भी खराव न था। पर उसकी सत्यं से न बनती थी। इसके शायद दो कारण थे—एक तो सत्यं के कारण पद्मनाभ की मरम्मत हुई थी, और दूसरा सत्यं ब्राह्मण था।

सीताराम के माँ-बाप ब्राह्मणों को सामाजिक शोपक समझते थे। उनकी नजरों में वे स्वार्थी, चालाक और "नीच" थे। सीताराम एक विद्वेपमय वातावरण में पला था।

गाँव की टोली खेतों की मेड़ पर से चली जा रही थी। खेतों में कुछ न था। सीताराम के हाथ में डंडा था और कन्धे पर एक कम्वली। वह चलते-चलते किसी पेड़ की ओर इशारा करता और इधर-उध देखता चला जाता। उसको मालूम था कि गाँव के आस-पास कहाँ-कह शहद के छत्ते लगे हुये थे। कोडूर के रास्ते में ही पाँच-दस छत्ते थे वह शायद शहद निकालने की योजना वना रहा था।

"सत्यं ने क्या स्कूल छोड़ दिया है?" टोली के एक सदस्य ने सीताराम से पूछा। वह आगे-आगे चलता जाता था।

"वह भला स्कूल क्यों छोड़ेगा?" सीताराम ने पीछे मुड़कर कहा।

उसे एक-दो फर्लांग पीछे, मेड़ पर सत्यं आता हुआ दिखाई दिया। "देखो, वह चला आ रहा है।" सब खड़े होकर पीछे देखने लगे। वे छः सात थे।

सीताराम ने चाल धीमी कर दी। उसकी टोली भी धीमे चलने लगी। फिर न जाने उसे क्या सूझा कि उसने कहा, "जल्दी-जल्दी आओ, स्कूल में मिलेंगे।" सीताराम जान-बूझकर पीछे रह गया। सत्यं उससे थोड़ी देर वाद आ मिला।

"अरे भाई इस रास्ते से काहे को जाते हो ? नहर के किनारे, किनारे जो चले जाते ? वहाँ तो कोई आता-जाता नहीं है......" सीताराम ने ताना मारा।

"मेरी मर्जी, चाहे किसी रास्ते जाऊँ।" सत्यं ने कहा।

"अरे गुस्सा क्यों करते हो ?—" सीताराम उसका रास्ता रोककर खड़ा हो गया।

"मुझे जाने दो।"

"वाह-वाह, क्यों नहीं ? वह प्रतीक्षा कर रही होगी, जाओ, जल्दी।" सीताराम ने रास्ता देते हुए कहा।

"जव मैं तुम से नहीं बोलता हूं, तो तुम मुझसे क्यों बोलते हो ?"

"तुम अव हम से क्यों वात करोगे ? है न वह पुल पर, सारा कोडूर जानता है यह वात।"

"जानता है तो जानता रहे, मुझे इससे क्या ?"

"ब्राह्मण का छोकरा है और करतूतें ये हैं।" सत्यं तब तक आगे बढ़ गया था पर यह सुनते ही वह सीताराम की ओर घूर कर देखने लगा।

"ये आँखें किसी और को दिखाना चलता जा।" सीताराम अपना डंडा और कम्वली सँभालता हुआ पास के पेड़ के नजदीक गया। सत्यं चला जा रहा था। स्कूल का समय हो गया था।

सीताराम थोड़ी देर पेड़ के नीचे खड़ा रहा। पेड़ की टहनी से एक बड़ा छत्ता लटक रहा था। कोडूर की तरफ से नलिनी की माँ चली आ

रही थी, उसके साथ एक नौकर भी था। वह उन्हें आता देख चकित खड़ा रहा। फिर अपना कम्वल और डंडा लेकर पेड़ों की आड़ में से कोडूर की तरफ जाने लगा।

नलिनी की माँ काफी दूर पहुँच गई थी। सत्यं भी करीव-करीव कोडूर के पुल के पास आ गया था और सीताराम पुल के पास, नहर के किनारे, एक पेड़ पर कम्वल ओढ़कर चढ़ा हुआ था। उस पेड़ पर भी एक छत्ता था। वह सत्यं की पुल पर जाने की प्रतीक्षा कर रहा था। ज्यों ही वह गया उसने छत्ते पर डंडा मारा। मक्खियाँ पुल की ओर उड़ीं, भन्नाती हुई।

सीताराम तो कम्वल ओढ़कर बैठा था और वेचारे सत्यं की बुरी हालत हो रही थी। मक्खियों ने उसे खूब काटा, मुँह सूज गया, आँखें भर आईं। वह दर्द के कारण कराहने लगा।

सत्यं ने सोचा कि घर वापिस लौट जाय। वह, उस हालत में शायद स्कूल नहीं जाना चाहता था। वह मुँह पर हाथ रख, मक्खियों की ओर पीठ कर मुंडेर पर झुक गया। मक्खियाँ उड़ गईं। फिर न जाने उसने क्या सोचा कि कोडूर की ओर ही चल पड़ा।

जब वह स्कूल में पहुँचा, तो लड़के उसको देखकर हँसने लगे। सब उसकी तरफ इस तरह देख रहे थे जैसे वह कोई हव्वाह हो।

"अरे, यह पुल पर खड़ा नलिनी से बातें कर रहा था। नलिनी शहद जैसी है, शायद और भिडों को ईर्ष्या हो गई हो और डाह में इसे काट लिया हो।" यह कहता-कहता राजू जोर से हँसने लगा। राजू और सत्यं में अक्सर होड़ रहा करती। दोनों क्लास में अव्वल थे।

सत्यं गुस्सा करता तो लड़के उसको और उल्लू वनाते। वह चुप रहा। सब सुनता गया, यद्यपि वह मन ही मन आग हो रहा था। अभी मास्टर साहव न आये थे।

"यह तो सारा कोडूर जानता है इनकी बात, सुना है एक दिन पान की दुकान पर ऐसा बैठा था जैसे पागल हो गया हो।" सूर्यनारायण

ने कहा। वह कोडूर में ही रहता था। यह बात भी सच थी। सत्यं सुनकर चुप रह गया।

जब मास्टर साहब कमरे में आये, तो उनके साथ सीताराम भी था। भीगी बिल्ली बना हुआ, जैसे कुछ जानता ही न हो। लड़के सत्यं की ओर देखकर अब भी हँस रहे थे।

"क्या हो गया है यह सत्यं ?" मास्टर जी ने पूछा। लड़के हँसते जाते थे, "चुप होओ तुम सब।"

सत्यं चुपचाप खड़ा रहा।

"कहो भी।" मास्टर जी ने फिर पूछा।

"मैं स्कूल आ रहा था कि पुल पर आते ही मधुमक्खियों ने काट लिया।" लड़के हँसी रोकने का प्रयत्न कर रहे थे।

"दर्द हो रही होगी, अगर घर जाना चाहते हो तो तुम जा सकते हो।"

सत्यं अपना थैला उठाकर चल दिया। नीचे की श्रेणियों को वह बहुत ध्यान से देखता गया। वह नलिनी की तलाश में था। उसे वह कहीं दिखाई न दी।

वह हताश हो स्कूल के फाटक से निकल रहा था कि उसने देखा कि सड़क पर नलिनी चली आ रही थी। वह वहीं थोड़ी देर खड़ा रहा। उसको वहाँ देखते ही नलिनी ने नौकर को जाने के लिए कह दिया। वह सत्यं के पास आकर खड़ी हो गई। स्कूल के बरामदे में अब भी कुछ लड़के खड़े थे।

"क्या हो गया है यह ?" नलिनी ने पूछा।

"मधु-मक्खियों ने काटा है, घर जा रहा हूं।"

"चलो मैं साथ चलती हूं।" दोनों चल दिये। लड़के तालियाँ पीटने लगे। उन्होंने एक बार भी पीछे मुड़कर न देखा। उनमें एक प्रकार का साहस आ गया था, वे लज्जित न थे। वे उस दशा को पार कर चुके थे जब कि शरमा जाना स्वाभाविक-सा लगता है।

वे नहर के रास्ते 'कोत्तपटन' जा रहे थे। आध-एक फ़र्लांग चलते और आध घंटा बैठ जाते। नलिनी खुशी-खुशी स्कूल आई थी, क्योंकि जो वह चाहती थी, वह ही हो रहा था। उसकी माँ ने उसको पढ़ने की अनुमति दे दी थी। वह सोच रही थी कि कब शाम होती है और कब वह सत्यं के साथ घर जाती है। उसकी माँ पहले ही जा चुकी थी।

और अब वह नहर के किनारे बैठ कर सत्यं के चेहरे को रह-रहकर ठण्डे पानी से धो रही थी। शक्ल उसने ऐसी बना रखी थी, जैसे मधु-मक्खियों ने उसे ही काट लिया हो।

जब सत्यं घर पहुँचा तो उसे मालूम हुआ कि कांचना को भी मधु-मक्खियों ने काट लिया था। वह कराह रही थी।

ग्यारह

सुख और सन्तोष की घड़ियाँ एक पर्वत शृङ्खला की घाटियों की तरह हैं। घाटियाँ छोटी-छोटी, तंग और ऊँचे-ऊँचे, लम्बे-लम्बे पहाड़। जिन्दगी चढ़ाई-उतार में है। सुस्ताने के लिए कभी-कभी घाटी की साया मिल जाती है।

बचपन घाटी तो नहीं है, पर ऊँची-नीची तराई है। पर्वतारोहियों को तराई पार करते कितनी देर लगती है ?.........सत्यं और नलिनी की बचपन की तराई खतम-सी हो रही थी और यौवन के............ जीवन के उत्तुंग शिखर सामने नजर आते थे। हंसी-खुशी में, छेड़-छाड़ में बचपन बीतता गया और वे, श्रेणी के बाद श्रेणी पढ़ते गये।

समय बहुत सम-द्रष्टा है या उदासीन। बड़े-बूढ़ों के लिए भी वर्ष की वही अवधि है जो बच्चों के लिए है। अगर बूढ़ों के बाल पकते हैं तो बच्चों की मूँछें आती हैं। सत्यं के ओठों पर मूँछों की एक हल्की परत आ रही थी। धीमे-धीमे, मानो निकलती हुई शरमा रही हो।

नलिनी भी खिल उठी थी, फूल-सी, पंखड़ियाँ फैलाये.....यौवन पल्लवित हो रहा था। चेहरे पर स्निग्धता, चमक, नई जान-सी आगई थी। वक्षस्थल उभरा-सा आता था। वही लड़की जो निडर हो कोत्तपटनं के समुद्र-तट पर खेला करती थी अब अक्सर घर में ही रहा करती, यौवन पर लज्जा का अवगुंठन ओढ़े।

दोनों ने पढ़ना-लिखना छोड़ दिया था। सत्यं ने स्कूल-फाइनल तक पढ़ लिया था। वह अब कद्दावर, दुबला-पतला, भावुक नवयुवक हो गया था। उम्र कोई सत्रह-अट्ठारह साल की थी, पर मुँह पर हमेशा निरीहपन रहता, जैसे बचपन कोई स्थायी यादगार छोड़ गया हो।

पिता ने उसको मन्दिर में पूजा-पाठ करने के लिए कहा। पैतृक वृत्ति थी। सत्यं दो-चार महीने मन्दिर गया भी। पर पूजा-पाठ में उसका मन नहीं लगा। वह चित्रकला सीखना चाहता था। सवेरे से शाम तक कोई-न-कोई चित्र बनाता। बचपन की वे टेढ़ी-मेढ़ी, भद्दी लकीरों में अब स्पष्टता, नजाकत-सी आ गई थी। वह आसानी से चित्र बना लेता था। वह एक होनहार सफल चित्रकार था, उसके चित्रों में, वास्तविकता के साथ उसकी अपनी एक विशिष्ट शैली थी।

कन्धे पर थैला डाले वह समुद्र-तट पर इधर-उधर फिरता रहता, कभी मछुओं की झोपड़ियों को चित्रित करता, कभी समुद्र की उत्ताल तरंगों को, धूप-छाँह को रंग-बिरंगी ओढ़नी पहनाता। कभी गोधूलि-वेला का चित्र बनाता, कभी टीले पर बने प्राचीन मन्दिर का। और जब बाहर मेंह बरसता तो घर में बैठा नलिनी का चित्र तैयार करता। उसके हाथ कभी खाली न रहते।

कोडूर के जमींदार साहब ने जब उसका एक चित्र खरीद लिया तो उसको यकायक अपनी आजीविका का रास्ता भी दीख गया। पहले चित्र के बिकने पर न जाने उसकी आँखों में क्यों तरी आ गई थी।

उसने पिता से सविनय कह दिया कि वह मन्दिर में पूजा-पाठ न कर सकेगा। बच्चा तो था नहीं कि वे उसे डरा-धमाकर ले जाते। यूँ तो जिद्दी जवान को मनाना मुश्किल है और अगर जवान पर कला की धुन सवार हो तो उसे मनाना शायद असम्भव है। पैतृक वृत्ति जा रही थी, पिता नाखुश रहते, अपने पाँच-दस मित्रों से कहते-कहलाते, पर सत्यं से कुछ न कह पाते।

नलिनी की मौसी यह न चाहती थी कि एक जवान लड़की उसके

घर में रहा करे। उसकी माँ और मौसी में कुछ अनबन भी हो गई थी। माँ अपने धुन की पक्की थी। वह रो-धो कर श्री नायडू जी से कुछ रुपये ले आई थी और घर में ही नाचना सिखा रही थी। कोडूर से रोज एक मास्टर आता।

यद्यपि सत्यं और नलिनी उम्र के साथ काफी बदल गये थे, पर कोत्तपटनं में कोई खास फर्क न आया था। पद्मनाभ गाँव छोड़कर भाग गया था। एक दो परिवार जरूर रोजी की तलाश में कहीं और चले गये थे। मन्दिर में दरारें पड़ गई थीं। बहुत कोशिश करने पर भी मरम्मत के लिए चन्दा न इकट्ठा किया जा सका। समुद्र और नज़दीक थपेड़े खाने लगा था। नहीं तो कोत्तपटनं का जीवन वैसे ही चलता जाता था जैसे वर्षों से चला आ रहा था।

हाँ, एक बात जरूर हुई········जिसकी सब जगह बात होती। उस उजाड़ गाँव में आदिनारायण अपना दुमंजला मकान बना रहा था। उसने और जमीन खरीद ली थी। वह रईस तो पहले भी था, अब और धनी हो गया था। आस-पास के इलाके में उसका अच्छा लेन-देन का व्यापार था। खाली समय में सत्यं के पिता उनके घर में चले जाते। घर में मुश्किल से भोजन के लिए आते। सत्यं अक्सर अकेला ही रहता।

बारह

सत्यं नीम के नीचे बैठा था। नलिनी उसके पास टहनी पर कोहनी रखे खड़ी थी। चार-पाँच का समय था। आज नलिनी का मास्टर न आया था। सत्यं को भी कोई विशेष काम न था। पिता घर में न थे और कोई घर उस गाँव में ऐसा न था, जहाँ वह बिना बुलाये जा सकता था।

सत्यं हमेशा एकान्तप्रिय रहा है। उसका स्वभाव ही कुछ ऐसा है। पर आजकल वह बहिष्कृत-सा है। पिता भी ठीक तरह नहीं बोलते। गाँव के बड़े-बूढ़े उसको देखकर नाक-भौं चढ़ाते हैं। उसकी जाति की औरतें तो उससे ऐसी बचती हैं, जैसे वह कोई अछूत हो। यहाँ तक कि राघवराव जो पहले उससे दिल खोलकर बात किया करते थे, अब सत्यं के बातचीत करने पर भी इधर-उधर देखने लगते हैं।

राघवराव का घर गाँव से बाहर था। उन्होंने अपनी जमीन पर ही एक झोंपड़ा बना रखा था। सत्यं घूमता-घूमता अक्सर उनके घर पहुँच जाता था। राघवराव ब्राह्मण थे। उनकी दो पत्नियाँ थीं। एक ब्राह्मण और दूसरी वेश्या। उनकी उम्र कोई चालीस-बयालीस की होगी। उनको भी चित्रकला का शौक था।

इसलिए सत्यं हमेशा घर में रहता। उसे नलिनी से मिलते हुए कोई झेंप न होती थी। उसमें एक प्रकार का साहस आ गया था। कई बड़ी-

बूढ़ियों ने आ कर उसको समझाया, सम्बन्धियों ने कहा-सुना, पर जितना वे कहते उतना ही वह ज़िद पकड़ता। उसके मामा ने विवाह के बारे में भी बात छेड़ी, पर सत्यं ने कोई जवाब न दिया।

"जानते हो आजकल सीताराम क्या कर रहा है?" नलिनी ने पूछा।

"नहीं तो।"

"सुना है रेलवे में भरती हो गया है, आराम से जगह-जगह जाता है, अच्छी नौकरी है।"

"हूँ—अब तो उस टोली का यहाँ कोई भी नहीं है, सब इधर-उधर बिखर गये हैं, कोई रेलवे में है, कोई टीचरी कर रहा है, कोई नौकरी की तलाश में जूते घिस रहा है।"

"मगर—"

"क्या मतलब? तुम चाहती हो कि मैं भी कहीं जाकर किसी की तावेदारी करूँ—काम-धन्धे वाला बनूँ?"

"नहीं, नहीं मैंने कब कहा?"

"हमसे नौकरी नहीं होगी किसी की। मैं चित्र बनाना चाहता हूँ, यहाँ भी बना सकता हूँ। और न कोई काम मुझे आता है, न करना चाहता हूँ। दो दिन की जिन्दगी है। क्यों न मैं बसर करूँ जैसे चाहता हूँ। कहने वाले तो कुछ-न-कुछ कहेंगे ही चाहे मैं योगी ही बन-कर बैठ जाऊँ।"

"नहीं, नहीं, ऐसी गलती न [illegible] [illegible] विश्वामित्र की तरह ऊधम मचाते रहोगे।"

"जब मेनका है तो ऊधम मचाने में ही मजा है।" दोनों [illegible] हँसने लगे।

"आज मैंने एक बढ़िया चित्र बनाया है, अभी लाता हूँ।" [illegible] के अन्दर गया। नलिनी [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] निर्मोहिनी [illegible]

वेंकट स्वामी बाहर [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

एक कन्धे पर घास का गट्ठर था, दूसरे पर डंडा। मस्त, उन्मत्त-सा था। चौबीस का नौजवान। गाँव में रसिक समझा जाता था। रोज शाम को उसके घर में महफिल बैठती थी। गाना-बजाना होता था। वह खुद तबलची था।

नलिनी को अकेला बैठा देख, उसने उसको तिरछी नज़र से घूरा। धीमे से सीटी बजाई, और डंडा टेककर खड़ा हो गया। कभी सिर का कपड़ा ठीक करता, कभी धोती नीची करता। नलिनी किसी दूसरी ओर देख रही थी।

वैन्कट स्वामी थोड़ी देर वहाँ खड़ा रहा, फिर खखारकर चला गया। उसके पीछे नारायण बाबा चला आ रहा था। सफेद मूँछें, झुर्रियों वाला चेहरा, गंजा सिर, लाठी लिये हुए। उसको देखते ही वैन्कट स्वामी भैंसों के पीछे-पीछे चला गया।

नारायण बाबा जवानी में मोटर ड्राइवर था। तब मोटरें नई-नई आई थीं। मोटर चलाना शान समझा जाता था। उसकी कभी जमीन, जायदाद भी थी। पर वह जवानी में एक वेश्या के चक्कर में ऐसा फँसा कि सब-कुछ काफ़ूर हो गया। अब भी गाँव में वह उस वेश्या के साथ रहता है। पत्नी जीवित है। पर न नारायण बाबा उसको देखता है, न वह ही उसको। गाँव के छोटे-बड़े उसे बाबा कहकर पुकारते हैं।

ज्यों ही उसने नलिनी को देखा, "क्यों नलिनी बेटी, अकेली क्या कर रही हो ?"

नलिनी ने अनसुना कर दिया।

"अरी, तू बोलती ही नहीं ?"

नलिनी ने उसको एक बार मुस्कराते देखा। नारायण बाबा ने आँख मारी। वह इन बातों में पुराना घाघ था। सारी जिन्दगी बरबाद की थी और अब भी कुत्ते की तरह उसकी टेढ़ी पूँछ सीधी न हुई थी। नलिनी जब उसकी तरफ आँखें तरेरने लगी तो उसने बड़े मीठे स्वर में पूछा, "माँ है कि नहीं घर में ?"

नलिनी ने कुछ न कहा। वह अपनी राह पर चलता गया।

नलिनी पर जवानी क्या फूटी थी कि गाँव का हर शख्स, बूढ़ा हो या जवान, मनचला हो या भलामानस, उसको घूर-घूरकर देखता। किसी-न-किसी बहाने हर कोई उससे बोलने की कोशिश करता। गाँव में कई जवान लड़कियाँ थीं पर उनकी तरफ़ आँख उठाकर भी कोई न देखता था।

नलिनी की माँ भी लोगों से अक्सर ऐसी बातें करती जैसे वह कोई बिकाऊ माल हो———उसके नाच की प्रशंसा करती, लोगों को घर निमन्त्रित करती, यह सब नलिनी को न जँचता था।

सत्यं चित्र ले आया। चित्र में चाँदनी खिली हुई थी, पुष्प भी, पर दो-चार व्यक्ति, वृक्ष की तरह आँखें मींचे खड़े थे——मूँह पर हाथ धरे।

"समझ में आया ?" सत्यं ने पूछा।

"नहीं तो।"

"यह दुनिया ऐसी है······चाँदनी खिल रही है, पर मनुष्य अपने अन्धकार में चमगादड़ बना रहता है। वे अपनी परतन्त्रता और स्वतन्त्रता की परिभाषा में उलझे रहते हैं। शील और अश्लील के झंझट में ही पड़े रहते हैं, निष्क्रिय रहना पसन्द करते हैं।"

"और तुम ?"

"मैं उन लोगों में नहीं हूँ। चाँदनी इसलिए नहीं खिलती है कि मैं आँखें बन्द कर लूँ। मैं आँखें खोलकर चाँदनी देखूँगा और खूब देखूँगा। तुम्हें समझ में आया मेरा मतलब ?"

"मुझे तो कुछ समझ में नहीं आता," नलिनी ने कहा।

"आ जायेगा, मगर आँखें खोलकर रखो।" सत्यं हँसने लगा।

वे थोड़ी देर एक-दूसरे को देखते हुए बैठे रहे। अँधेरा हो रहा था। आसपास के घरों में बत्तियाँ जला दी गई थीं। घरों की छतों पर से धुआँ निकल रहा था। कुछ शोर-गुल भी था। लोग काम से वापस आ रहे थे।

"अरे बेटी, घर में दिया जला दो न।" कहती-कहती नलिनी की माँ आँगन में आई। नलिनी जल्दी-जल्दी घर में चली गई, पर उसकी माँ ने उसको सत्य से बातें करते देख लिया था।

"कितनी बार कहा कि उस ब्राह्मण छोकरे से बात न किया कर। आखिर वह किस काम का है? बाप पुजारी है, खुद बेकार है, न जमीन न जायदाद। तू हमारा सत्यानाश करेगी। मेरा दिल न दुखा।" नलिनी की माँ खरी-खोटी सुनाती चारपाई पर लेट गई और न जाने क्या-क्या बड़-बड़ाती रही।

नलिनी ने कुछ न कहा। उसको अपनी माँ का कहना-सुनना बिल्कुल पसन्द न आता था। वह बेचैन थी।

तेरह

दशहरे के दिन थे। कोत्तपटनं की उजाड़ वस्ती में भी चहल-पहल थी। खण्डहरों के पास वाले मकान सजा दिये गए थे। आदि-नारायण जी का मकान यद्यपि पूरा न बना था फिर भी वे दशहरे के शुभ अवसर पर गृह प्रवेश का प्रवन्ध कर रहे थे। मकान के सामने शामियाना खड़ा कर दिया गया था। मजदूर काम कर रहे थे। शाम को वहाँ नलिनी का नाच था। कोडूर के जमींदार भी आ रहे थे। गाँव में ऐसे अवसर कम ही आते थे।

सप्ताह-भर से मन्दिर में विशेष पूजा हो रही थी। रात को कोई न कोई हरि-कथा होती, या और कोई मनोरंजन का कार्यक्रम रहता। गाँव वालों ने इन शुभ कामों के लिए आदिनारायण जी के कहने पर आपस में चन्दा इकट्ठा कर लिया था। सत्यं के कई जान-पहचान वाले भी आये। पुराने सहपाठी। पर उसको देखते ही वे ऐसे कतराते जैसे किसी दुश्मन को देख लिया हो। उसकी "वदनामी" दूर-दूर तक पहुँच चुकी थी।

वाहर वह जा न पाता था और इन उत्सवों के दिनों में घर में अकेला वैठना उसके लिए कठिन हो रहा था। उसने नलिनी को वुलाया पर वह न आई। उसके घर में नायडु आये हुए थे और वे उसको अपनी नजरों से ओझल न होने देते थे।

सत्यं अकेला खेतों में निकल गया। सव जगह हरियाली थी। कहीं

धान लगा था, कहीं मिर्च, कहीं हल्दी, कहीं काजू, कहीं नारियल। मेड़ों पर से चला जाता था। राघवराव के मकान में भी उत्सव मनाया जा रहा था। उसकी वेश्या पत्नी ने पिछले दिनों एक पुत्र को जन्म दिया था। उसके कई सम्बन्धी भी आये हुए थे।

घर के पीछे से सत्य समुद्र के तट पर निकल गया। वहाँ कोई न था। सिवाय समुद्र की तुमुल ध्वनि और "सरयू" के पेड़ों के मर-मर शब्द के, सब शान्त था। रेती पर पड़ा वह दूर नील क्षितिज की ओर देखता रहा। न जाने उसकी आँखें कब मिच गईं। वह मस्त सोता रहा।

जब वह उठा तो शाम के चार बज रहे होंगे। वह थोड़ी देर वहीं उद्विग्न, उदास बैठा रहा। भूख लगने पर वह घर की ओर चला। अकेला था और नींद की खुमारी अब भी थी।

वह रेती के टीलों के पार गया ही था कि काजू के पेड़ों की झुरमुट में कुछ सुनाई दिया। वह चौंका। कोई चीज हिलती-सी लगी। वह आगे बढ़ा। वह पास वाले एक रेतीले टीले पर चढ़ गया। वह मुस्कराया और चुपचाप टीले पर से उतर आया।

वेणुगोपाल राव राघवराव के किसी सम्बन्धी से घुल-मिलकर पास-पास बैठे बातें कर रहे थे। लड़की शायद राघवराव की वेश्या पत्नी की बहन थी। दोनों की शक्ल-सूरत में समानता थी। वेणुगोपाल राव गाँव के बड़े-बूढ़ों में से थे। घर में रोज पूजा-पाठ होता था। धार्मिक समझे जाते थे। बिना विभूति लगाये कभी बाहर न निकलते थे। हमेशा राम-नाम जपते थे। सत्य की बदनामी करने में उन्होंने कोई कसर न छोड़ रखी थी।

सत्य के मन में एक क्षण यह बात आई कि क्या अच्छा होता कि वह छोटा बच्चा होता और पद्मनाभ जैसी उसकी टोली भी होती। इस धार्मिक महाशय की मट्टी पलीद करता। अब भी वह सोच रहा था, क्यों न उनकी पोल गाँव में खोली जाय?

वह चलता-चलता सोचता जाता था। बदनाम व्यक्ति की बात भला

कौन सुनेगा ? फिर किसी को बदनाम करने से क्या फायदा ? अपनी बिरादरी का ही तो है। सत्यं ब्राह्मण था, और ब्राह्मणों द्वारा बहिष्कृत भी। फिर भी हृदय के किसी तह में उसमें ब्राह्मणों के प्रति अभिमान था। ब्राह्मणेतर को वह समान न समझ पाता था। यद्यपि वह एक तरफ़ ज़ात-पात को धिक्कार रहा था पर दूसरी तरफ उसको पकड़े हुए भी था।

इसी उधेड़बुन में वह घर पहुँचा। घर में कोई न था। शाम के भोजन का आदिनारायण के यहाँ न्योता था। अँधेरा हो रहा था। नलिनी के घर के दरवाजे पर मोटा ताला लगा हुआ था। वह आदिनारायणजी के घर जा चुकी थी।

शामियाने में छोटा-सा रंगमंच था। रंगमंच के नीचे वेन्कटस्वामी तबला लिए बैठा था। उसके पास कोडूर के दो-चार गवैये थे। कोई हारमोनियम लिये, तो कोई दिलरुवा सँभाले। पहली पंक्ति में कोडूर के जमींदार, उनका परिवार, फिर नलिनी की मौसी वग़ैरह बैठी हुई थीं।

सत्यं रंगमंच से हटकर खड़ा रहा। सहसा उसको पद्मनाभ की याद आई। उस घटना को घटे सालों हो गए थे। पर उसकी याद ताजी थी। जीवन की छोटी-छोटी घटनाएँ एक माला में गुथी-सी लगती थीं। हरेक घटना का उसके लिए विशेष महत्व था। वह पियक्कड़ की तरह शामियाने की परिक्रमा लेने लगा।

आध-पौन घण्टे तक नलिनी रंगमंच पर नाचती रही। वह कभी उपस्थित सज्जनों को सिर हिलाते देखता, कभी बिजली होते नलिनी के पैरों को, और कभी आँखें बन्द कर पायल की झनक-झनक सुनता।

नाच समाप्त होते ही कोडूर के जमींदार ने भारत-नाट्य के लिए ज़रूरी खास जड़ीदार, क़ीमती वस्त्र नलिनी को भेंट में दिये। आदिनारायण ने भी, जो बहुत बड़े कंजूस समझे जाते थे, उस दिन १०१ रुपये का पारितोषिक नलिनी के लिए घोषित किया। सभी जगह नलिनी की वाह-वाह हो रही थी। अगर उसकी माँ उस दिन उछल पाती तो गुब्बारा

हो जाती, पर न जाने क्यों उसकी मौसी के मुँह पर मातम था।

नाच के बाद और लोग तो भोजन करने अन्दर चले गये। सत्यं और नलिनी रंगमंच की चमचमाती रोशनी में बात-चीत करने लगे। उनको न दुनिया की फिक्र थी, न उसकी नजरों की ही। "बदनामी" ने उन्हें बेफ़िक्र कर दिया था। सत्यं ने थोड़ी देर के लिए मुंह सुजा-सा लिया।

"क्यों मुँह सुजा रखा है ?" नलिनी ने पूछा।

"हूँ।" सत्यं ने नाराजगी का आडम्बर तब भी बनाये रखा।

"इसलिए नाराज हो कि मैं इतने लोगों के सामने नाची ?"

"हूँ।"

"कह जो दिया होता ?"

"अरे, तुम इतना भी न समझ पाईं ? मैं तो इसलिए मुँह सुजाये खड़ा था कि कहीं कोई मुझे प्रसन्न देख नज़र न लगा जाये।" वह हँसने लगा। "बुरा क्यों लगे भला, अच्छा लगा। नृत्य-कला ही ऐसी है कि जब तक पाँच-दस इसको न देखलें तो इसका मजा ही नहीं आता। यह सामाजिक कला है।"

"और चित्र बनाना ?"

"वैयक्तिक और शायद........."

"शायद-वायद हटाओ, खाना खाया कि नहीं ?"

"ये लोग क्या हमें खाने देंगे ? हम लोग तो बहिष्कृत हैं।"

"क्यों नहीं देंगे, हम भी तो निमन्त्रित हैं ?"

जब वे दोनों अन्दर गये तो काफी लोग खाना खा चुके थे और श्री वेणुगोपाल राव कोडूर जमींदार के सामने पुराण-पठन कर रहे थे, जैसे कोई तन्मय भक्त हों। उनको देखते ही सत्यं को बरबस हँसी आ गई।

पता-ठिकाना न मालूम था, एक दिन वह कहीं से टपक पड़ा और उसके आते ही कोत्तपटनं में सरगर्मी पैदा हो गई। ओस-पड़ोस के लोग तो यह भी कह रहे थे कि वापिनीडु लड़के के साथ मद्रास चला जायगा।

कोत्तपटनं छोड़कर मद्रास में वस जाने की परिपाटी वहुत पुरानी है। कोत्तपटनं के कई व्यापारी परिवार वहाँ कारोवार कर रहे हैं। मद्रास में कोत्तपटनं वालों की अपनी एक विरादरी-सी थी। उनमें कई लखपति थे, कई चपरासी, कई फेरीवाले, कई सूदखोर महाजन। वापिनीडु के मद्रास जाने की वात सुन किसी को आश्चर्य न हुआ।

पर इस पर जरूर लोगों ने दाँतों तले अंगुली दवाई कि पद्मनाभ, जो आस-पास के इलाके में अपनी आवारागर्दी के लिये वदनाम था, आज संगीत-निर्देशक वना हुआ था। अच्छी कमाई थी। सुनते हैं उसकी मद्रास में वड़ी पूछ थी, एक वंगला था, छोटी-सी कार भी, कई नौकर-चाकर।

पद्मनाभ ने पाँच-छः चित्रों के लिये संगीत-निर्देशन किया था। मद्रास जाकर उसने अपना नाम वदल लिया था। वह पद्मनाभ से पी० नाभ हो गया था। शायद यही कारण था कि कोत्तपटनं के लोगों ने उसके चित्र तो जरूर देखे थे, पर वे उसका नाम न पहचान पाये थे। और न जाने क्यों पद्मनाभ ने अपने ठिकाने के वारे में वापिनीडु को भी सूचना न दी थी।

जव पद्मनाभ आया तो साथ-वहुत कुछ साज-सामान भी ले आया। कुर्सी, मेज और न जाने क्या-क्या वाजे-गाजे। वह थोड़े दिन आराम से कोत्तपटनं में काटना चाहता था। यहाँ उसने अपना वचपन इस मस्ती में काटा था कि वह न अपना वचपन ही भूल पाता था, न कोत्तपटनं ही। कोत्तपटनं से वह जितना दूर जाता, उतना ही अपने को उसके समीप पाता। कोत्तपटनं का एक-एक टीला, नहर, नाव, समुद्र, मन्दिर उसको वुलाने लगते थे।

कोत्तपटनं आते ही वह वहाँ के प्राचीन मन्दिर में गया और वहाँ
सने एक भजन गाया, हाथ जोड़कर, आँखें मींचकर। वह भक्त
गता था, एकदम वदला हुआ-सा। उसको देखकर आश्चर्य होता था।

वह सत्यं से मिलने गया। रोज शाम को जाता, गप्पें लगाता, उसके
त्र देखता। वचपन में जिन दोनों में तीन-छः का रिश्ता था, अब दो-
ार वन गये थे···एक-दूसरे के वहुत समीप लगते थे।

पद्मनाभ अच्छा कद्दावर हो गया था। वड़े-वड़े घुँघराले वाल,
शाल मस्तक, उसके चेहरे पर एक आकर्षण था। सम्पन्नता में यौवन
ी वहार कुछ और ही होती है, मानो सावन में वारह मास समा गये हों।

पद्मनाभ को सव मालूम हो गया था, पर वह यह न समझ पा रहा
ा कि कोत्तपटनं में सत्यं का क्यों वहिष्कार हो रहा था। पद्मनाभ को
ससे वातचीत करता देख आदिनारायण भी उससे कभी कुछ न कहते।
ादिनारायण के लिए पद्मनाभ की वढ़ती हैसियत, रुपया-पैसा काफी
ा। वे न जाने क्यों पद्मनाभ से मेल-मिलाप करना चाहते थे, शायद दो
नी विरोधी चुम्वक हैं जो आपस में एक-दूसरे की ओर खिंचते हैं। यह
ी कहते सुना गया कि उसके लड़के ने, जो मद्रास में रहा करता था,
द्मनाभ के वारे में उनको लिखा भी था।

एक दिन सत्यं से पद्मनाभ ने कहा, "भगवान् ने तुम्हें कला दी है,
यों इस तरह यहाँ सड़ते हो? न कोई देखने वाला, न पहचानने वाला,
द्रास चले चलो। लोग देखेंगे, तारीफ होगी और पैसे भी वनेंगे।"

"हमें यहीं रहने दो।" सत्यं ने कहा।

"कला, भाई, अरण्य-पुष्प नहीं है कि जंगल में खिले और मुरझा
ाये। वह वगीचे का कीमती पौधा है, जिसकी जी-जान से परवरिश की
ाती है।"

"पर वहाँ हमें कौन पूछेगा, वहाँ तो हजारों चित्रकार होंगे।"

"इस दुनियाँ में सवके लिए जगह है। अगर हजार चित्रकार हैं तो
लाखों चित्रों के पारखी भी तो हैं·····यह तुम भूल जाते हो।"

"फिर भी........" सत्यं हिचकिचाने लगा।

"तुम फिक्र न करो, मैं सब इन्तजाम कर दूँगा।"

"अच्छा, देखा जायेगा।" सत्यं ने कहा। बातें करते-करते वे नहर में नाव में सैर करने निकल गए। पद्मनाभ ने अपनी मीठी आवाज में तरह-तरह के लहजे में जाने कितने ही गीत गाये। वह बचपन को दुहराना चाह रहा था।

जब शाम को वे घर पहुँचे, तो नलिनी की माँ बरामदे में बैठी हुई थी। वह उनकी प्रतीक्षा कर रही थी। उसको भी पता लग गया था कि पद्मनाभ मद्रास में कोई बड़ा संगीत निर्देशक हो गया है। वह नलिनी का नाच उसे दिखाना चाहती थी।

वह पद्मनाभ को घर में ले गई। नलिनी पद्मनाभ को शहरी वेश-भूषा में देख चौंकी, पर सत्यं को साथ पा मुस्कराई। माता के बहुत कहने पर नलिनी नाचने लगी। पद्मनाभ उसके साथ थोड़ी देर तक बाँसुरी बजाता रहा, फिर राग अलापने लगा। वह नलिनी की ओर देख रहा था और नलिनी चकित नयनों से उसकी ओर।

"तुम तो खूब नाचती हो, पर इससे भी अच्छा नाच सकती, बशर्ते कि तुम्हें कोई अच्छा सिखलाने वाला मिल जाये। भगवान् की दी हुई प्रतिभा को यहाँ व्यर्थ कर रही हो।"

"बेटा, तुम मदद करो, मैं तुम्हारा अहसान मानूँगी।" नलिनी की माँ उसका हाथ पकड़कर कहने लगी।

"पर तुमने संगीत सीखा कहाँ?" नलिनी ने पूछा।

"क्या बताऊँ? कितनी मेहनत की है। दर-दर भटका हूँ, कई गुरुओं के पैर पकड़े और अब कुछ मालूम हुआ है। सात वर्ष तन्जौर में रहा, संगीत सीखा और अब भी नौसिखिया ही हूँ। समुद्र का किनारा है पर संगीत का कोई किनारा नहीं है।"

"मैंने कभी कल्पना भी न की थी कि तुम इतना संगीत सीख जाओगे।" नलिनी ने कहा।

"क्यों बेटा, अभी घर वाले हुए हो कि नहीं ?" नलिनी की माँ ने पूछा।

"पहले नलिनी को घरवाली कर दो।" पद्मनाभ ने मुस्कराते हुये कहा। काँचना अपना पोपला मुँह लेकर रह गई।

"तुम दोनों की अच्छी जोड़ी है.......एक चित्रकार, एक नर्तकी। किस्मत वाले हो भाई," पद्मनाभ ने सत्य से कहा।

नाच-गाने में आधी रात हो गई। पर तीनों में उस रात कोई भी अच्छी तरह न सोया। वे हवाई किले बनाने लगे थे।

पन्द्रह

पौ फटा ही था कि कोडूर जमीन्दार का नौकर काँचना के घर का किवाड़ खटखटा रहा था। नलिनी की माँ ने किवाड़ खोले। नौकर ने नलिनी की माँ के कान में कुछ कहा और चला गया। वह भी मुस्कराती-मुस्कराती खुशी-खुशी अन्दर गई।

नलिनी अभी सो रही थी। उसकी देर तक सोने की आदत हो गई थी। उठाये भी न उठती थी। उसकी माँ रोज झुंझलाकर, थपथपाकर उठाती, पर आज उसने बड़े प्यार से कहा, "बेटी, उठ। सवेरा हो गया है।" नलिनी ने करवट बदली। "उठो भी बेटी, तुम बहुत अच्छी हो," नलिनी ने अधमिची आखों को बन्द करते हुए फिर करवट बदली।

"जल्दी उठोगी तो तुम्हें कोडूर ले जाऊँगी।" उसकी माँ बगल में गई और नलिनी का मुंह सहलाने लगी। नलिनी तुरत उठ बैठी।

"कब चलोगी ?" उसने उत्कन्ठा से पूछा। "क्या मौसी ने खबर भिजवाई है ?"

"नहीं तो, जमीन्दार साहब का नौकर आया था। तू किस्मतवाली है।"

"जमीन्दार साहब के यहाँ से ?" नलिनी मुँह मसोसकर आँखें मलती हुई बैठी रही। वह इतनी सयानी हो गई थी कि इन बातों को

आसानी से समझ सकती थी। उसको माँ का पेशा पसन्द न था, न माँ ही कभी-कभी भाती थी। जमीन्दारों के लिए वह अपनी लड़की की नाक कटवाने को तैयार थी। माँ-नानियों ने वेश्यावृत्ति की थी, इसका मतलब यह तो नहीं कि वह भी करे। माँ की वृत्ति के कारण उसको बचपन में जो अपमान सहने पड़े थे, अब भी उसके मन में ताजे घाव की तरह थे।

वह दातुन मुख में दबा सहन में टूटी दीवार के पास बैठ गई। सत्यं के घर की ओर लगातार देखती रही। पर सत्यं वहां न था। वह मन्दिर गया हुआ था। नलिनी अक्सर दो-तीन मिनट में दातुन कर लेती थी, पर आज सोचती-सोचती काफी देर तक बैठी रही।

"नहा-धोकर कपड़े बदल लो न ?" उसकी माँ ने कहा।

"मेरी तबीयत ठीक नहीं है। मैं कोडूर जाना नहीं चाहती। मुझे कुछ नहीं चाहिए।"

"तबीयत को क्या हो गया है ? चल-फिर तो रही है, काफी नहीं है ? आजकल की लड़कियाँ भी क्या नखरे करती हैं ?" उसकी माँ गुनगुनाती जाती थी, "कई ऐसे मूर्ख भी हैं इस संसार में कि भगवान् छत फोड़कर देते हैं और वे हाथ पसारकर बटोरना भी नहीं जानते।"

नलिनी कुछ न बोली, उसने माँ की बातें अनसुनी कर दीं।

"मैं कहती हूं, अच्छा मौका है, बाद में पछताओगी। जमीन्दार की आँख हर किसी पर नहीं पड़ती। इस ब्राह्मण के छोकरे ने तुम पर क्या जादू कर रखा है ?"

"माँ, काफी है, चुप भी रहो।" नलिनी ने भौहें सिकोड़ते हुए कहा।

"चुप क्यों नहीं होऊँगी—तेरे सहारे जो जी रही हूं," माँ ने कहा। नलिनी की आँखों में तराई आ गई। न जाने वह क्या सोच रही थी।

पिछले कुछ दिनों से उसकी माँ का व्यवहार बदलता जाता था। जो पहिले हर बात पर डाँटा-डपटा करती आजकल ज़बान को काबू में रखती थी। न अक्सर झुंझलाती थी, न कड़ुवा ही कहती। नलिनी जवान

हो रही थी और उसकी माँ शायद उसकी कीमत समझती थी।

नलिनी चादर ओढ़कर चारपाई पर लेट गई। उसकी माँ आँगन की ओर चली। नलिनी ने चोरी-चोरी देखा कि कहीं सत्यं वापिस न आ गया हो और उसकी माँ उस पर आग वरसा रही हो। सत्यं वहाँ न था। नलिनी ने सन्तोष की साँस ली।

आठ-दस का वक्त था। नलिनी के घर में चुप्पी थी। न माँ से वह वात कर रही थी न माँ उससे। घर के सामने घोड़ा गाड़ी आकर रुकी, नलिनी की मौसी आई थी। उसकी आँखों में लाली थी, मानों रात-भर न सोई हो। वह कभी विना साज-शृंगार के बाहर न निकलती थी। पर आज ऐसा लगता था, जैसे सीधे विस्तरे से उठकर चली हो। वाल विखरे हुए थे। चेहरे पर पाउडर की परत भी न थी—सूखी चमड़ी साफ दिखाई देती थी।

"क्यों अच्छी तो हो ?" नलिनी ने सिर हिला दिया। "तवीयत खराव है ?" जमना ने इस तरह पूछा जैसे चाहती हो कि उसकी तवीयत खराव हो जाय।

"हाँ, कुछ ऐसी ही है।" नलिनी ने कहा। उसकी मौसी दूसरे कमरे में चली गई, जहाँ उसकी वहन वैठी हुई थी। जमना वातचीत करने में वहुत दक्ष थी। डाह, ईर्ष्या, क्रोध, आदि को ज़ब्त करना वह जानती थी।

वहुत देर तक इधर-उधर की वातचीत होती रही। इतने घूम-फिराव की जरूरत न थी, क्योंकि उसकी वहन वखूवी जानती थी कि वह क्यों आई है।

"जमीन्दार साहव का नौकर आया था क्या ?" जमना ने पूछा।

"आया तो था," कांचना ने उत्तर दिया।

"हमारी नलिनी," उसने धीमे-धीमे कहा, जिससे दूसरे कमरे में नलिनी कुछ सुन न पाये, "अभी तो सयानी हुई है। यह जमीन्दार भी अजीव है। ऊपर का ढोंग-ढकोसला है, रुपया-पैसा भी नहीं।" नलिनी की माँ

सिर हिलाती जाती थी, जैसे वह अपनी बहन की हड्डी-हड्डी पहचानती हो। "नलिनी फूल सी है, इन जमीन्दारों के हाथ क्यों सौंपती हो। अपनी लड़की है इसलिए सवेरे-सवेरे चली आई। नलिनी की तबीयत भी खराब है।"

कांचना भले ही किसी और बात में बेअक्ल रही हो, पर इन बातों में वह बहुत तेज थी। इशारा काफी होता था और वह सारी बात समझ जाती थी। पर वह चुप रही।

"नलिनी तो अब काफी नाच सीख गई है। क्यों नहीं मद्रास ले जाकर किसी फिल्म में भरती कर देतीं ?" जमना ने कहा।

"देखा जायगा, आजकल की लड़कियाँ माँ की बात सुनें तब न ?" कांचना ने कहा।

जमना दिन-भर वहीं रही, वहीं खाना खाया, नलिनी से गप्पें लगाती रही और शाम को अन्धेरा होने के बाद कोडूर चली गई। जाते-जाते वह बहन से कहती गई, "फिक्र न करो, मैं जमीन्दार साहब से कहला दूँगी कि नलिनी बीमार है।"

"जो तुम चाहो अपनी बला से कह देना," नलिनी कहना चाहती थी, पर उसने कहा नहीं, मुस्कराती खड़ी रही।

माँ और बेटी में कोई बातचीत न हुई। कांचना कोसती-कुढ़ती सो गई।

सोलह

यद्यपि आदिनारायण ही मुख्यत: वापिनीडु के कोत्तपटनं छोड़कर जाने के कारण थे, तो भी पद्मनाभ की आवभगत करने में आज वे अगुवा थे। उन्हीं के कहने पर पद्मनाभ को पीटा गया था पर आज वे पद्मनाभ का सम्मान करने में अपनी प्रतिष्ठा समझते थे। धन का प्रभाव शायद धनिकों पर ही अधिक होता है।

पद्मनाभ के सम्मान में पाँच-दस व्यक्तियों को उन्होंने बुला रखा था और भी जमा हो गये थे। एक मनोरंजन के कार्यक्रम का भी प्रवन्ध किया गया था। आदिनारायण का लड़का वेन्कटेश्वरलु इसमें विशेष दिलचस्पी ले रहा था। वेन्कटेश्वरलु की उम्र वाइस-तेईस की है। इन्टरमीडियेट में पढ़ते-पढ़ते वह नाटकों के चक्कर में ऐसा फंसा कि पढ़ाई-लिखाई को नमस्ते कर दी। शहर-शहर किसी नाटक कम्पनी के साथ फिरा। कोई सफलता न मिली। वड़ा लड़का था, माँ-वाप को उसकी यह आवारागर्दी कतई पसन्द न थी। वहुत कहने-सुनने पर भी वह अपनी जिद पर अड़ा रहा और जव माँ-वाप ने रुपये भेजने वन्द कर दिए तो मद्रास भाग गया, फिल्मी कम्पनियों के किवाड़ खटखटाने लगा। फाकेवाजी करता, दर-दर भटकता। पर कहीं कोई रास्ता न मिला, रोजी भी न वनी।

आखिर आदिनारायण को तरस आई। वे लड़के की इच्छा व

रा करने का प्रयत्न करने लगे। उन्हें बताया गया था कि पद्मनाभ ी भी काफी पूछ है, दसियों फिल्म-निर्माता उसकी सिफारिश पर किसी ी काम दे सकते हैं। इसीलिए आदिनारायण शायद उसकी खुशामद र रहे थे।

वेन्कटेश्वरलु ने दो-चार नाटकों में जरूर भाग लिया था, पर भग-ान् उसको अच्छी शकल देते तो शायद उसके भाग्य में कुछ और ाता। स्याह रंग, बड़ी घनी भौंहें, चपटी-फूली नाक, छोटी-छोटी आँखें, ोटे होंठ, बाहर निकले दांत। पर शौक ऐसा कि वह फिल्मी कला-ार के सिवाय और कुछ न होना चाहता था।

आदिनारायण ने नलिनी की माँ के पास खबर भिजवाई कि वह लिनी को लेकर उनके घर आ जाय। कांचना आदिनारायण जी से ०१ रुपये का पुरस्कार अभी तक वसूल न कर पाई थी, उसकी उम्मीदें ी बढ़ गई थीं। पैसे की तंगी में आदमी न जाने क्या-क्या करता है, फर नलिनी की माँ नलिनी की माँ ही ठहरी। वह लड़की को लेकर ादिनारायण के घर पहुँच गई।

सत्यं को पहले ही पद्मनाभ अपने साथ ले गया था। सत्यं के पिता ी वहाँ निमंत्रित थे। सत्यं आजकल उनके प्रति कुछ उदासीन-सा ो गया था। पिता भी उसको कह-कहकर ऊब गये थे।

वेन्कट स्वामी अपना तबला लेकर पहुँच गया था। पद्मनाभ के हाथ ं बांसुरी थी। गाँव के और शौकिये भी थे, कोई बिल्को लाया, कोई ृदंग। उस उजाड़ गाँव में भी संगीत की एक लहर-सी चल पड़ी।

पद्मनाभ ने गाना शुरू किया......भरत-नाट्य का कोई राग था और नलिनी नृत्य करने लगी, ताल से ताल मिलाती हुई। सत्यं तन्मय हो उसकी भाव-भंगिमा देखना चाहता था, पर दर्शक कभी सीटी बजाते, कभी चिल्लाते, सत्यं उनकी ओर क्रोध-भरी दृष्टि से देखता और झुंझलाकर रह जाता।

बहुत देर तक रंग जमा। पद्मनाभ की बहुत प्रशंसा हुई। [illegible]

मालूम कि पद्मनाभ संगीत में प्रवीण था कि नहीं पर उसकी आवाज के बारे में दो राय नहीं हो सकती थीं। बहुत ही गम्भीर, बहुत ही मधुर, स्पष्ट और स्वाभाविक। और उस वीरान गाँव में तो वह अरण्ड वृक्ष सदृश भी था।

लोगों ने उसकी वाह-वाह की। आदिनारायण जी ने उसके गले में एक मोटी-सी माला पहनाई, वेन्कटेश्वरलु ने साष्टांग कर शिष्य बनने की इच्छा प्रकट की। परन्तु इस सम्मान के झमेले में किसी ने नलिनी की परवाह न की, वह स्थानीय जो थी और फिर वेश्या की लड़की।

आदिनारायण ने तो दो-चार परिचितों के कान में यह भी कहा, "जोड़ी तो है इन दोनों की···एक गाये और दूसरी नाचे।" नलिनी की माँ ने सुन लिया, "आप ठीक ही कहते हैं, पर लड़की सुने तब न?"

आदिनारायण ने पद्मनाभ से पूछा, "कैसी नाचती है नलिनी ?"

पद्मनाभ ने कहा, "तितली की तरह" फिर दूर हटकर सत्यं से उसने कहा, तितली है, पर फूल-फूल पर नहीं नाचती। उसके तो तुम ही एक फूल हो।" दोनों अट्टहास करने लगे। सत्यं के अट्टहास में कृत्रिमता थी। "अरे यार, मद्रास लाओ, यहाँ समय क्यों व्यर्थ कर रहे हो ?" पद्मनाभ ने कहा।

"हाँ, ठीक कहते हो, पर मैं चाहता हूँ कि तुम वेन्कटेश्वरलु की भी मदद करो। उसे नाचने गाने का बुरा चस्का है। कहीं लगवा दो।" आदिनारायण ने कहा।

"आप भी क्या कह रहे हैं। आपको भगवान ने काफी दे रखा है, आप खुद एक फिल्म कम्पनी बना सकते हैं, लाख के दो लाख कर सकते हैं और अपना वेन्कटेश्वरलु उसमें काम करेगा।" पद्मनाभ ने सलाह तो दे दी, पर वेन्कटेश्वरलु को देखकर वह मन-ही-मन हँस रहा था।

पद्मनाभ को आदिनारायण जी ने भोजन के लिए निमन्त्रित किया। सत्यं और नलिनी दोनों मिलकर मन्दिर के पिछवाड़े में घूमने निकल गये। चुप, चिन्तित, विह्वल।

सत्रह

आदिनारायण ने अपनी दो बैल-गाड़ियाँ पद्मनाभ को स्टेशन ले जाने के लिए दीं। वह स्वयं एक गाड़ी में था। उसके साथ उसका लड़का वेन्कटेश्वरुलु भी था। दो-चार और गाँव के आदमी थे। वेन्कट स्वामी भी अपनी लाठी लिये गाड़ियों के पीछे चला आ रहा था। सिवाय सुब्बाराव के पुराने गुट का कोई न था।

वापिनीडु स्वयं गाड़ी हाँकना चाहता था, पर उसके लड़के ने उसे आराम से बैठने के लिए कहा। किन्तु वह आदिनारायण के साथ एक ही गाड़ी में बैठने का साहस न कर सका। वह भी वेन्कट स्वामी के साथ-साथ चलने लगा।

सत्यं को पद्मनाभ ले आया था। जिन्होंने उनको बचपन में कुत्ते-बिल्ली बने देखा था, वे आज उनको साथ देख आश्चर्य करते थे। पद्मनाभ शहरी तौर-तरीके सीख गया था। उसकी बातचीत में भी एक प्रकार की नफासत आ गई थी। वह अब मुँहफट न था, शब्द तोल-तोलकर कहता, ऐसे मानो कोई कुशल कलाकार हो।

सत्यं में कोई परिवर्तन न था, यद्यपि पद्मनाभ उससे आत्मीयता से बात करता पर सत्यं का रुख पहले जैसा ही करीब-करीब रहा। फर्क इतना था कि वह अब पद्मनाभ से बातें कर लेता, उसका बस चलता तो वह अपने घर ही बैठा रहता। पद्मनाभ ही उसको हर जगह

घसीट ले जाता था और वह इन्कार न कर पाता था।

कोडूर के स्टेशन पर पद्मनाभ को देखने के लिए छोटी-मोटी भीड़ जमा हो गई थी। कुछ उसके पुराने दोस्त, कुछ सिनेमा के उत्सुक और कुछ भीड़ को देखकर आये हुए तमाशवीन। ट्रेन के आने में अभी देरी थी। पद्मनाभ ने सत्यं को अलग लेजाकर कहा, "यार अब तुम ही वचपन के साथी रह गये हो, वचपन में तो लड़ाई-झगड़े हुआ ही करते हैं—सब भूल जाओ—कभी-कभी खत लिखते रहना। लिखोगे कि नहीं?"

सत्य चुप रहा। वह अन्यमनस्क-सा कुछ और सोच रहा था।

"अरे, क्या सोच रहे हो? लिखना। वाकी सब तो क्लर्की, मुनीमगिरी कर रहे हैं। अब तुम ही रह गये हो और अपना शौक पूरा कर रहे हो।"

सत्यं उसकी तरफ देखकर मुस्करा दिया।

"दो दिन की जिन्दगी आदमी को इसलिए नहीं दी गई है कि दफ्तरों में वक्त जाया किया करें, कुर्सियाँ तोड़ा करें। पैदा होने के साथ भगवान् हरेक को एक प्रतिभा देते हैं। उस प्रतिभा का पूर्ण उपयोग करना ही जीवन का उद्देश्य होना चाहिए।"

"छुटपन में तो तुम किसी सभा में श्रोता के रूप में भी हाजिर न होते थे और अब लगता है कि तुम वक्ता भी वन गये हो।"

दोनों एक-दूसरे के हाथ-में-हाथ रखकर हँसने लगे। हँसते-हँसते पद्मनाभ ने कहा, "पर उपदेश कुशल वहुतेरे······" कहते-कहते वह तुरन्त रुक गया, जैसे कोई गलती कर वैठा हो, "पर जो मैं कह रहा हूँ, वह उपदेश नहीं है, सच है।"

सत्यं कुछ न वोला।

"पर यार, शौक तभी अच्छा है, जब शौक से रोजी भी वन जाय। इस गाँव में जिन्दगी तो कट जायगी पर दुनिया न देख पाओगे। न दुनिया ही तुम्हें देख पायेगी। कभी तो इन खण्डहरों को छोड़ दिया करो।

मालूम है खण्डहरों में कौन रहता है ? उल्लू।" पद्मनाभ हँसने लगा, "यार मद्रास आना, जाते ही चिट्ठी लिखूंगा।" ट्रेन आने का समय हो गया था। वह और लोगों से औपचारिक रूप से बातें करने लगा।

ट्रेन छूटने के बाद आदिनारायण अकेले ही अपनी गाड़ी में कोत-पटनं जा रहे थे। उनका लड़का पद्मनाभ के साथ चला गया था। एक गाड़ी तो बिल्कुल ही खाली जा रही थी। पर उन्होंने सत्यं को साथ चलने के लिए इशारा भी न किया।

पैर घसीटता-घसीटता, सत्यं घूमता-फिरता, शाम को घर पहुँचा। कोडूर में उसने कागज, रंग वगैरह भी खरीद लिये थे। वह फिर से अपने काम में जुट जाना चाहता था। जब तक उसे काम था, उसे इस बात की परवाह न थी कि उससे कोई बात करता है कि नहीं।

वह नीम के पेड़ के नीचे गया। पर नलिनी के सहन में कोई न दिखाई दिया। दीवार फाँदकर, खपरैल के ढेर पर खड़े हो उसने इधर-उधर ताका, वहाँ कोई न था। आँगन में झाड़ू भी न दी गई थी। घड़े-मटके इधर-उधर पड़े हुए थे, मुर्गियाँ उन्हें कुरेद रही थीं। वह नलिनी के घर की दीवार के पास गया। पिछवाड़े का दरवाजा बन्द था। उसका माथा ठनका।

वह सड़क पर गया। नलिनी के घर में एक बड़ा मोटा ताला लगा हुआ था। सब दरवाजे-खिड़कियाँ बन्द थे। बाहर भी कोई न बैठा था। सत्यं को कुछ समझ में न आया। जब वह सवेरे कोडूर गया था, सब ठीक था। इस बीच में क्या हो गया ?

वह इसी सोच में अपने घर के बरामदे में बैठ गया। थोड़ी देर बाद नारायण बाबा "चुट्टा"[1] पीता-पीता उस तरफ से गुजरा। सत्यं को चिन्तित देख उसने नमक छिड़कने की कोशिश की, "नलिनी का इन्तजार कर रहे हो, दो-चार दिन विरह के कटेंगे। नायडू गुजर गये हैं, नलिनी की माँ उसको लेकर उनके गाँव गई है।" कहता-कहता नारायण बाबा

१. चुरुट

चला गया।

पाँच-दस मिनट में न जाने सत्यं ने कितनी ही कल्पनाएँ कर ली थीं···उसने कल्पना में नलिनी को कोडूर के अस्पताल में देखा था। मुस्कराते-मुस्कराते उसने एक लम्बी सांस खींची और पिछवाड़े में नीम के नीचे जाकर बैठ गया।

अठारह

सत्यं को कुछ सूझ न रहा था। यदि नलिनी गाँव में होती, भले ही उसकी उससे भेंट न हो, सत्यं का मन काम में लगा रहता। परन्तु उसकी अनुपस्थिति में वह मचल उठता। नलिनी का ही ध्यान रहता।

वह घूमने निकल पड़ा। टीले पर काजू के पेड़ की छाया में अच्छी चौकड़ी जमी हुई थी। गप्पें लग रही थीं। नारायण बाबा की आवाज ही सबसे ऊँची थी। वह बातूनी था, जवानी में जगह-जगह घूमा था। किसकी गांठ में क्या है, यह उसको अक्सर मालूम रहता।

सत्यं भी दूर एक टीले पर बैठ गया—उदास, खिन्न-सा। नारायण बाबा कह रहा था, "सुना है नायडू मर गये हैं। अब बेचारी कांचना क्या करेगी ?"

"तुम्हारे होते उसको क्या कमी बाबा ?" रामय्या ने हँसकर कहा। नारायण बाबा भी 'चुट्टा' बनाता-बनाता मुँह ऊँचा कर हिनहिनाने-सा लगा। "अरे यार, हमारे दिन तो गये, दाँत रहे नहीं, लार टपककर रह जाती है।" वह और जोर से हँसने लगा।

"नायडू से उसको फायदा ही क्या था ?" रामय्या ने कहा।

"यह तो अब की बात है, वह बेचारा इसको देते-देते बरबाद हो गया था। जानते हो कांचना ने जवानी में क्या गुल खेले थे। पैसा उस

पर वरसता था, पर कम्वख्त पाप का पैसा टिकता नहीं," नारायण वावा चुट्टा सुलगाकर कहता गया, "हाँ, हाँ, पर अव उसके लिए क्या दिक्कत ? वेश्याएँ भी केले के पेड़ की तरह होती हैं। एक वेकार हुआ नहीं कि उसकी जगह दूसरा उग आता है।" वावा की नजर सत्यं पर थी और सत्यं यह सुनकर लाल-पीला हो रहा था। वावा कहता जा रहा था, "क्या लड़की है नलिनी। खूव खिली है। क्या गजव का नाचती है। जव तक नलिनी है कांचना को रोटी के लाले तो नहीं पड़ने चाहिएँ।" सत्यं नारायण वावा की ओर घूर रहा था। वह उम्र में वड़ा था, लड़-झगड़ भी न सकता था। नारायण वावा कहता जाता था, "पर उसका दिमाग फिरा हुआ है—जवानी है, एक ब्राह्मण के छोकरे पर जान दे रही है। जव आटे-दाल का भाव पता लगेगा तो फूल-फूल पर से शहद वटोरना भी सीख जायेगी।" सत्यं वहाँ से उठकर चला जाना चाहता था। हाथ की मिट्टी भी साफ की, पर न जाने फिर उसे क्या सूझा वह वहीं वैठा रहा।

"कोडूर इन वेश्याओं का अड्डा था। गली-गली में, छज्जे-छज्जे में वे वैठी दिखाई देती थीं, पर न अव वे दिन हैं न पुराने शौक ही। वे भी मद्रास भाग गई हैं और जो वाकी रह गई हैं, उनको कोई पूछता नहीं। आजकल नौजवान तो नाद से ही खाना जानते हैं।" नारायण वावा ने धुआँ उगलते हुए कहा। वह सिवाय वातों के कुछ न करता था, वातें भी कई वार ऐसी करता कि सुनने वालों को लगता मानो कोई वरछी भोंक रहा हो। इसलिए उसके कई दोस्त थे, कई दुश्मन भी। ब्राह्मणों से तो उसको नफरत थी।

"अरे सुना है अव इस चींटी के भी पर लगे हैं। वेणुगोपाल रण्डियों के पीछे पड़ा है। महीने में पन्द्रह दिन कोडूर में पड़ा रहता है। ये वगुला भक्त वड़े खतरनाक होते हैं—अगर किसी को कत्ल भी करते हैं तो राम-नाम जपते-जपते। किसने मना किया था लड़कियों के संग फिरने से ? फिर यह ढोंग-ढकोसला काहे का ? अछूत को देखकर ऐसा चलेंगे, जैसे उसकी छुई हुई हवा भी अपवित्र हो और महाशय के कारनामे ये हैं।

कोई पूछे तो कह देंगे कि भगवान् कृष्ण की भी तो सैंकड़ों गोपियाँ थीं। होंगी, पर कृष्ण ढोंगी तो न थे।" सत्यं भी मन-ही-मन हँसने लगा।

"पर वेणुगोपाल राव की तो काफी उम्र हो गई है ?" रामय्या ने पूछा।

"अरे तुम अभी छोटे हो। जानते नहीं हो, टिमटिमाता दिया ही भक-भक करता है। अगर तेल काफी हो तो लौ सीधी और तेज जलती है। समझे ?" नारायण बाबा ने कहा।

रामय्या तीस-बत्तीस का था। पाँच एकड़ जमीन थी। मेहनत के समय मेहनत करता, खाली समय में गप्पें लगाता। सन्तोषी जीव था, बाबा से उसकी गहरी छनती थी। उसके अलावा उसके दो दोस्त और वहाँ थे।

"और इस आदिनारायण ने उस लड़के का तो बहिष्कार कर रखा है"—(उसका संकेत सत्यं की ओर था), "वेणुगोपाल राव का क्या करेगा ?"

"करेगा क्या ? दुम पकड़े रहेगा। यह आदमी भी खूब है।" नारायण बाबा की आदिनारायण से न पटती थी। आदिनारायण ब्राह्मणों के पक्षपाती थे। मन्दिर में पूजा-पाठ भी उन्हीं के सहारे होता था। वे मन्दिर के धर्म-कर्ता थे। "सुना है कि अब वह उस छोकरे पद्मनाभ की भी चिकनी-चुपड़ी कर रहा है। कभी उनके बाप को गाली देकर भगा दिया था और आज लड़के की खुशामद कर रहे हैं। वह लड़का शहरी हो गया है, बहुत चलता-पुरजा लगता है। बचपन में उसने गाँव वालों के नाक में दम कर रखा था।"

"आदमी बदल भी तो जाते हैं बाबा ?" रामय्या ने कहा।

"अरे नस्ल नहीं बदलती। क्या घड़े-घड़े के साथ पानी की तासीर भी बदलती है; भले ही वह ठंडा-गरम होता रहे ? खैर, सूरज बहुत चढ़ गया है, चलो चलें खाना खा आयें," बाबा ने कहा।

"बाबा जानते हो आदिनारायण कोई मशीन ला रहे हैं, जो घंटे में

वीसों एकड़ जमीन जोत देती है, न बैल की जरूरत, न हल की ।" रामय्या ने कहा ।

"लाये, चाहे जो-कुछ लाये अपनी बला से । गौ माता का अनादर है, भुगतेगा । देखते रहना, खैर, हमें क्या मतलब ।" बाबा टोली के साथ चले गये ।

सत्यं वहीं चिन्तित बैठा रहा ।

उन्नीस

कई दिन बीत गये। नलिनी और उसकी माँ घर वापिस आ गये थे। दो-चार दिन कांचना सिसकती रही, फिर यथापूर्व रोजमर्रे के काम-काज में लग गई। फर्क इतना था कि कांचना के घर में काफी आदमी आने-जाने लगे थे। आदिनारायण भी कई बार आये—एक बार पच्चीस रुपये दे गये, दूसरी बार पचास। वे अपना एक सौ सोलह रुपयों का पुरस्कार किश्तों में दे रहे थे, यह उनका कहना था।

सत्यं के कान में उनके ये शब्द पड़े, "अब तो नायडु नहीं है, पैसे की जरूरत हो तो माँग लेना—खबर भिजवा देना।" वह कांचना से कह रहे थे और नजर उनकी नलिनी पर थी।

नलिनी को यह सब शायद न भाता था। जब उसकी मौसी ने आकर उस पर आग उगली तो वह तिलमिला उठी थी। "मैंने तुम्हारे जमींदार को ठीक तरह देखा भी नहीं है।" नलिनी जवान हो रही थी और उसकी जवानी को देखकर कई जलने वाले भी हो गये थे।

नलिनी को दिन-रात उसकी माँ सताती, खाने-पीने की तंगी के बारे में रोती-पीटती, यह कहती, वह कहती, कोई आता तो टालने-टालने के लिए कहती। वह कोई बहाना करती और आगन्तुक को निराश चला जाना पड़ता। कांचना चाहती थी कि जमींदार साहब की दृष्टि नलिनी पर

माँ से तंग आकर वह अक्सर सत्यं से बातचीत करती रहती। सत्यं भी आजकल बहुत प्रसन्न था, उसके दो-चार चित्र प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो गये थे। उसको पर्याप्त प्रोत्साहन मिल रहा था, सवेरे वह चित्र बनाता और शाम को नलिनी के साथ समय व्यापन करता।

एक दिन नलिनी माँ से झगड़ रही थी, उनको झगड़ता देख वह घूमने निकल गया। नलिनी के बारे में वह अक्सर चिन्तित भी रहता। प्रेम की चिरसंगिनी—ईर्ष्या कुरेदने लगी थी, कला का परदा घिस-घिस कर पतला होता जाता था। वह काफी देर तक समुद्र तट पर टहलता रहा। अन्धेरा हो गया। तारे निकल आये। वह चन्द्रमा का उदय देखता-देखता समुद्र तट पर आठ-नौ बजे तक पड़ा रहा।

जब वह घर पहुँचा तो नलिनी के घर के सामने एक मोटर खड़ी थी और अन्दर से पायल की झन-झन और तबले की धन-धन की आवाज आ रही थी। कोई गा भी रहा था। अगर सत्यं मोटर न देखता तो शायद इस विषय में वह सोचता भी नहीं। पर वह अब ऐसे खड़ा हो गया जैसे कोई जड़ मूर्ति हो।

वह अपने घर में गया। उसने खिड़की खोली। नलिनी के घर की खिड़की खुली थी। खासी महफिल लगी हुई थी। कोडूर के ज़मींदार साहब थे, दो-चार उनके साथी और आदिनारायण भी। कमरे में इत्र की महक इतनी थी कि सत्यं को भी सुगन्ध आने लगी। वह यह न देख सका, उसने खिड़की बन्द कर दी। पिता खा-पीकर बराण्डे में खुर्राटे लगा रहे थे।

वह कुछ सोचना चाहता था पर नलिनी ही उसके दिलो-दिमाग में चक्कर काट रही थी। कहे भी तो कैसे कहे कि दूसरों के सामने वह न नाचे। नृत्य कला जो है, उसी ने तो उसको नृत्य के लिये प्रोत्साहित किया था, नृत्य सामाजिक कला है।

"पर मेरा मतलब यह तो न था," वह सोच रहा था, "ये

लम्पट उसके घर में आकर धरना दिया करें। उसकी माँ वेश्या है, वह माँ की बात सुने या मेरी? घर में कोई आदमी नहीं, आमदनी का कोई रास्ता नहीं—तो क्या इन नीचों के सामने ही नाचकर रोजी बनानी है? उसकी माँ भले ही वेश्या हो, नलिनी तो नहीं है, पर—" वह कुछ निश्चय न कर पाया। वह छटपटा-सा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके अन्तर में कोई रस्सी बुनी जा रही हो।

उसने खिड़की खोल दी। महफिल में रंग आ रहा था, नलिनी नाचती जा रही थी, उसके पैरों में विशेप स्फूर्ति थी, कपड़े भी सजे-धजे थे, शायद जमींदार साहब लाए थे। कांचना अतिथियों को पान-सिगरेट दे रही थी। आदिनारायण जा चुके थे। कोटूर के ही आदमी थे।

सत्यं यह न देख सका, उसके मन में आया कि सारे घर में आग लगा दे। जमींदार को कान पकड़कर निकाल दे। पर वह वहाँ से हिल न सका। वह नलिनी पर खीलने लगा। अगर वह न चाहती तो क्या वे उसे जबरदस्ती नचा सकते थे? क्या वह खुशी-खुशी नाच रही है?

वह घर बैठा न रह सका—मन्दिर की ओर चला गया। उसके मन में ज्वार-भाटा आ रहा था। चांदनी खिली हुई थी और समुद्र उफानें भरता चिघाड़ रहा था। वह मन्दिर के टूटे हुए प्राकार में बैठा रहा।

समय बीतता गया। पर उसकी आंखों में नींद न आई। वह जाने क्या-क्या सोच रहा था—"नलिनी भी वेश्या की पुत्री है—वेश्या पुत्री वेश्या न होकर क्या होगी? मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। लोग मुझे पागल कहेंगे, मूर्ख कहेंगे, इतना ही तो? नहीं, नहीं। मैं क्या करूँ?"

वह इन्हीं ख्यालों में तड़पता रहा। फिर उसके विचारों ने एक और करवट ली, "शायद वह नाच ही रही हो। अगर वह सिर्फ नाच ही रही थी, तो मुझे क्यों न बताया गया? जरूर दाल में कुछ काला है।" वह दीवार पर से उतरकर मन्दिर के प्रांगण में चहल-कदमी करने लगा।

"न जाने वे लोग क्या-क्या कर रहे होंगे? नलिनी

माँ से तंग आकर वह अक्सर सत्यं से बातचीत करती रहती। सत्यं भी आजकल बहुत प्रसन्न था, उसके दो-चार चित्र प्रतिष्ठित पत्र-पत्रिकाओं में प्रकाशित हो गये थे। उसको पर्याप्त प्रोत्साहन मिल रहा था, सवेरे वह चित्र बनाता और शाम को नलिनी के साथ समय व्यापन करता।

एक दिन नलिनी माँ से झगड़ रही थी, उनको झगड़ता देख वह घूमने निकल गया। नलिनी के बारे में वह अक्सर चिन्तित भी रहता। प्रेम की चिरसंगिनी—ईर्ष्या कुरेदने लगी थी, कला का परदा घिस-घिस कर पतला होता जाता था। वह काफी देर तक समुद्र तट पर टहलता रहा। अन्धेरा हो गया। तारे निकल आये। वह चन्द्रमा का उदय देखता-देखता समुद्र तट पर आठ-नौ बजे तक पड़ रहा।

जब वह घर पहुँचा तो नलिनी के घर के सामने एक मोटर खड़ी थी और अन्दर से पायल की झन-झन और तबले की धन-धन की आवाज आ रही थी। कोई गा भी रहा था। अगर सत्यं मोटर न देखता तो शायद इस विषय में वह सोचता भी नहीं। पर वह अब ऐसे खड़ा हो गया जैसे कोई जड़ मूर्ति हो।

वह अपने घर में गया। उसने खिड़की खोली। नलिनी के घर की खिड़की खुली थी। खासी महफिल लगी हुई थी। कोडूर के ज़मींदार साहब थे, दो-चार उनके साथी और आदिनारायण भी। कमरे में इत्र की महक इतनी थी कि सत्यं को भी सुगन्ध आने लगी। वह यह न देख सका, उसने खिड़की बन्द कर दी। पिता खा-पीकर बराण्डे में खुर्राटे लगा रहे थे।

वह कुछ सोचना चाहता था पर नलिनी ही उसके दिलो-दिमाग में चक्कर काट रही थी। कहे भी तो कैसे कहे कि दूसरों के सामने वह न नाचे। नृत्य कला जो है, उसी ने तो उसको नृत्य के लिये प्रोत्साहित किया था, नृत्य सामाजिक कला है।

"पर मेरा मतलब यह तो न था," वह सोच रहा था, "

लम्पट उसके घर में आकर धरना दिया करें। उसकी माँ वेश्या है, वह माँ की बात सुने या मेरी ? घर में कोई आदमी नहीं, आमदनी का कोई रास्ता नहीं—तो क्या उन नीचों के सामने ही नाचकर रोजी बनानी है ? उसकी माँ भले ही वेश्या हो, नलिनी तो नहीं है, पर—" वह कुछ निश्चय न कर पाया। वह छटपटा-सा रहा था। उसे ऐसा लग रहा था जैसे उसके अन्तर में कोई रस्सी बुनी जा रही हो।

उसने खिड़की खोल दी। महफिल में रंग आ रहा था, नलिनी नाचती जा रही थी, उसके पैरों में विशेष स्फूर्ति थी, कपड़े भी सजे-धजे थे, शायद जमींदार साहब लाए थे। कांचना अतिथियों को पान-सिगरेट दे रही थी। आदिनारायण जा चुके थे। कोडूर के ही आदमी थे।

सत्यं यह न देख सका, उसके मन में आया कि सारे घर में आग लगा दे। जमींदार को कान पकड़कर निकाल दे। पर वह वहाँ से हिल न सका। वह नलिनी पर खीलने लगा। अगर वह न चाहती तो क्या वे उसे जबरदस्ती नचा सकते थे ? क्या वह खुशी-खुशी नाच रही है ?

वह घर बैठा न रह सका—मन्दिर की ओर चला गया। उसके मन में ज्वार-भाटा आ रहा था। चांदनी खिली हुई थी और समुद्र उफानें भरता चिंघाड़ रहा था। वह मन्दिर के टूटे हुए प्राकार में बैठा रहा।

समय बीतता गया। पर उसकी आंखों में नींद न आई। वह जाने क्या-क्या सोच रहा था—"नलिनी भी वेश्या की पुत्री है—वेश्या पुत्री वेश्या न होकर क्या होगी ? मेरा उससे कोई सम्बन्ध नहीं है। लोग मुझे पागल कहेंगे, मूर्ख कहेंगे, इतना ही तो ? नहीं, नहीं। मैं क्या करूँ ?"

वह इन्हीं ख्यालों में तड़पता रहा। फिर उसके विचारों ने एक और करवट ली, "शायद वह नाच ही रही हो। अगर वह सिर्फ नाच ही रही थी, तो मुझे क्यों न बताया गया ? जरूर दाल में कुछ काला है।" वह दीवार पर से उतरकर मन्दिर के प्रांगण में चहल-कदमी करने लगा।

"न जाने वे लोग क्या-क्या कर रहे होंगे ? नलिनी की माँ इन—

खुश नजर आ रही थी। यह उसकी करतूत है। नलिनी उससे झगड़ तो रही थी। नलिनी कोई दुध-मुँही बच्ची नहीं है। सयानी है, समझदार है। दोनों का साझा तो नहीं ? मैं उसका मुँह भी न देखूंगा।" उसने मंडप में सोने का प्रयत्न किया।

पर थोड़ी देर बाद वह उठ गया। "मैं साफ-साफ उससे कह दूंगा कि मुझे यह गवारा नहीं है। पर क्या वह मुझे अपना मुंह दिखा सकेगी ? क्या मैं उससे कह सकूंगा ?" इसी सोच-विचार में वह उलझता रहा। चन्द्रमा अपने मार्ग पर चलता जाता था, उसे समुद्र की क्या खबर ? समुद्र की लहरें ऊपर लपकतीं और उछल-उछल कर रह जातीं। सत्यं को ऐसा लगा जैसे चन्द्रमा में भी कोई महफिल लगी हुई हो और पायल बज रहे हों। उसने आखें मींच लीं।

सबेरे जब पिता ने आकर मन्दिर में घण्टी बजाई तब उसकी आंखें खुलीं और वह मूर्ति की ओर मुँह कर खिन्न मुद्रा में नमस्कार करने लगा। पिता उसको देखकर मुस्कराए। उससे बातचीत करने की कोशिश की पर वह चुप रहा—मानो ध्यानमग्न हो। पिता के जाने के बाद ही वह घर गया।

था……जैसे वे दैत्य हों, बड़ी-बड़ी आखें, मादक लोलुप आखें, अश्लील संकेत, तने हुए चेहरे, विकृत, व्यसन ग्रस्त, शिथिल, अस्पष्ट, असंख्य।

नलिनी की नज़र सत्यं की अंगुलियों पर थी। वह चकित थी। पर सत्यं का मुँह देखकर वह जान सकती थी कि उसके मन में क्या गुज़र रही है। उसने चित्र इस तरह रखा कि नलिनी की उस पर पूरी नज़र पड़े। पर उसने नलिनी की तरफ न देखा।

"क्यों मुँह सुजा; रखा है ?"

सत्यं चुप रहा।

"ज़बान मुख में कैद रहने के लिए नहीं बनाई गई है।" नलिनी ने ओंठ भींचते हुए कहा।

सत्यं चुप रहा।

"रात-भर कहाँ गायब रहे ? बहुत नाराज नज़र आते हो।"

सत्यं न बोला।

"बोलने से क्या तुम्हारा कोई व्रत टूट जायगा ?"

सत्यं ने अपना मुँह मोड़ लिया।

"बोलो भी।"

सत्यं चित्र की ओर देखने लगा।

"नहीं बोलोगे ?"

सत्यं ने चित्र नीचे रख दिया।

"देखें कब तक नहीं बोलते हो ?" नलिनी की आँखों में से आसू झर गये। उसने खिड़की बन्द कर दी, सत्यं ने भी खिड़की बन्द कर दी, चित्र पूरा हो गया था।

वह चटाई पर लेट गया। उसके मन में अब भी वही तूफ़ान चल रहा था। कभी उसे नलिनी पर क्रोध आता, कभी उसके प्रति सहानुभूति होती। वह विचित्र अवस्था में था। वह सोच रहा था, "जब लौ जलती है तो कालिख बनती ही है पर परवाना तो लौ ही देखता है, वह परवाना ही क्या जो कालिख देखे ? क्या मैं परवाना हूँ ? क्या मैं

नलिनी के बगैर नहीं रह सकता ?" वह इसी प्रश्न पर काफी देर तक अटका रहा, यही प्रश्न कई रूपों में उठा पर वह कोई उत्तर न दे सका।

सत्यं उठ खड़ा हुआ "नहीं, न यह लौ जलेगी, न कालिख बनेगी। नहीं यह न होगा।"

उसने झट खिड़की खोली, पर नलिनी के घर की खिड़की बन्द थी। उसने अपना उत्तरीय उठाया, घर में ताला लगाकर बाहर निकल गया। उसे कुछ सूझ न रहा था। वह अपने ही से बचना चाहता था। पर वह कहाँ जाय ? और वह किससे बातें करे ? घूमता-घूमता वह गाँव के तालाब के पास गया। वहाँ एक बड़ के पेड़ के नीचे नारायण बाबा की चौकड़ी लगी हुई थी। वह भी उनसे कुछ दूर हटकर बैठ गया।

"जमना को जमींदार साहब ने जवाब दे दिया है। कांचना के भाग्य खिल रहे हैं। कांचना तो क्या नलिनी के भाग्य जगे हैं।" उनकी बातें सुनकर सत्यं को ऐसा लगा जैसे जान-बूझकर वे उसे चिढ़ा रहे हों। "सुनते हैं नलिनी ने भी कारोबार शुरू कर दिया है। रात भर जमींदार यहीं पड़े रहे। आदिनारायण भी पहुँच गया था। बड़ा बनता था।" सत्यं वहाँ बैठा न रह सका। नीचे मुँह किये वह चला गया।

वह तालाब के किनारे ही चलता गया। तालाब के उस तरफ आदिनारायण का घर था। उनके घर के चबूतरे पर पाँच दस आदमी बैठे हुए थे। सत्यं को देखते ही वे ऐसे समझे जैसे कोई आदरणीय भक्त आगया हो। सत्यं कुछ समझ न सका। वह पीपल के पेड़ के नीचे अन्यमनस्क-सा बैठ गया।

"सुना है वह भक्त होगया है। रात भर मन्दिर में पूजा करता रहता है।" आदिनारायण ने कहा। यह सुन सत्यं चौंका। पर कुछ न बोला।

"दिन-रात पूजा में लगा रहता है। हमारे भक्त

वनते हैं, पहिले एक पागलपन में रहते हैं, फिर भक्ति में पागल हो जाते हैं।"

सत्य को अव पिता की मुस्कराहट का मतलब समझ में आया। शायद उन्होंने ही वताया होगा कि उसने मन्दिर में रात काट दी थी। उसको वहाँ वैठा देख उन लोगों ने अपनी वातें वन्द कर दीं और उसके वारे में वातें करने लगे।

वह वहाँ से उठकर चला गया। उसे उन लोगों पर आश्चर्य हो रहा था। उसकी विवशता वढ़ती जाती थी। वहुत देर तक वह पागल की तरह खेतों में घूमता रहा। थक-थकाकर एक पेड़ के नीचे सो भी गया।

जव वह उठा तो पांच वज रहे थे। वह कुछ निश्चिन्त-सा लगता था। लपका-लपका घर गया। घर में, नीम के नीचे नलिनी वैठी थी, उदास, खिन्न।

"नलिनी, तुम नाचना वन्द कर दो।" सत्य ने इस तरह कहा जैसे निशाना ठीक कर लिया हो और गोली छोड़ दी हो। इसका असर भी नलिनी पर शायद गोली का-सा हुआ। वह थोड़ी देर तक हैरान रही। फिर कहा, "और तुम्हें कोई चित्र वनाने से मना करे तो?"

"चित्र वनाना एक वात है और नाचना कुछ और।"

"तुम्हीं तो कहते थे कि दोनों कला हैं?"

"पर——"

"और यह कला तभी खिलती है जव कि दो चार इसे देखने वाले हों और अव जव कि दो-चार देखने वाले आ रहे हैं तो तुम खौलने लगे हो।"

"नहीं-नहीं, मेरा मतलव······"

"दूसरों को उपदेश हर कोई दे सकता है, तुम ही तो कहते थे, कला साधना है, तपस्या है, यह है वह है···।"

"नहीं, नहीं······"

"आदर्श कला में ईर्ष्या का कोई स्थान नहीं।"

"सुनो भी।"

"अभी चढ़ना भी शुरू न किया कि तुम फिसलने लगे। और...",

"तुम सुनती ही नहीं हो........." सत्यं ने इन प्रत्युत्तरों की आशा न की थी। वह इनके लिए अनुद्यत था।

"अगर तुम्हारी कला के बारे में यही ख़याल था तो पहले ही कह देते, मैं दरवाजा बन्द रखती। किसी को न आने देती। अब मुझे मालूम हुआ कि आदमी कहते कुछ हैं और सोचते कुछ और हैं।" वह यकायक सिसकने लगी। मुख में साड़ी का छोर रख अन्दर चली गई।

"नहीं, नहीं, मेरा मतलब......" सत्यं कह ही रहा था कि उसे भी विवश हो अन्दर जाना पड़ा। सारी रात-भर खिड़की खोली रखी, पर नलिनी के घर की खिड़की बन्द रही।

इकतीस

दोनों ने एक-दूसरे को देखा और निगाहें नीची कर लीं······
मन्दिर के पीछे सूर्योदय देखने लगे। दिन अपनी यात्रा आरम्भ कर रहा था। न सत्यं बोल पाया न नलिनी ही। उनके हृदय का एक भाग क्रोध में दहक रहा था, दूसरा भाग स्नेह-वर्षा कर रहा था, कहीं धूप थी, कहीं छाया······अजीब मानसिक मौसम था।

सत्यं ने उसको एक बार बुलाना चाहा, ओंठ हिले, पर आवाज़ न आई, नलिनी ने मुँह फेर लिया। वह पैर पटकती हुई घर के अन्दर चली गई। सत्यं उसको देखता खड़ा रहा।

अपने घर के अन्दर जाकर उसने खिड़की खटखटाई पर नलिनी ने उसके संकेत का कोई उत्तर न दिया। सत्यं मचल उठा। वह बाहर चला गया। कुछ सूझ न रहा था। कोडूर की ओर चल पड़ा। कोडूर का रास्ता उसके लिए विशेष आकर्षक था······जैसे-जैसे वह चलता गया उसको एक-एक घटना याद आने लगी······सारा बचपन एक सिमटे हुए चित्र की तरह खुलने लगा।

वह नलिनी से बहुत बार नाराज़ हुआ था, कई बार उसने यह भी सोचा था कि वह उससे बोलेगा भी नहीं, पर उसका दिल नलिनी की याद में तड़पता रहता। वह उससे बोले बगैर न रह पाता। वह हमेशा अपने को ही दोषी समझता। पर इसके लिए समय लगता। रात-भर

वह नलिनी के बारे में बुरा-भला सोच रहा था, पर सवेरा होते ही उससे बोलने के लिए वह उतावला हो उठा।

वह वापस चला जाना चाहता था। पुल के पास खेमे, शामियाने देखकर वह थोड़ी देर रुका, शायद कोई नुमाइश हो रही थी। वह दो-चार कदम आगे बढ़ा भी पर न जाने क्या सोचकर वह कोत्तपटनं की ओर चलने लगा।

सत्यं सोच रहा था "मैं भले ही कलाकार हूँ, पर कलाकार क्या मनुष्य नहीं है ? क्या वह नहीं रोता जब कोई उसकी चीज छुड़ाना चाहता है ? कला साधना है, बाजार नहीं है। आखिर नलिनी क्या करे ? वह भी लाचार है। माँ पिशाचिनी की तरह उसको गन्दे रास्ते में ढकेल रही है। अगर कोत्तपटनं छोड़कर चला गया तो ? रोजी का रास्ता ? रोजी बने या न बने कम-से-कम इस अपमान से तो बचेंगे। देखा जायगा, भगवान् है ही।

"कोत्तपटनं में रहने से क्या फायदा ? पद्मनाभ भी कहता था। क्या पद्मनाभ अच्छी नीयत का है ? क्या वह मदद करेगा ? मदद करे या न करे कोत्तपटनं में अब रहना मुश्किल है।"

उसने निश्चय कर लिया। उसको अपने पैर हल्के लगने लगे। वह कोई प्रिय राग आलापने लगा। चाल में तेजी आ गई। वह मद्रास के सपने देखने लगा—प्रदर्शनियों के प्रशंसकों के।

वह घर पहुँचा, पर तुरन्त नलिनी को न पुकार पाया। उसमें कहीं अभिमान कूक रहा था—यह भावना कि वह एक स्त्री से बड़ा है। वह अपने को अपराधी समझता था पर वह यह न चाहता था कि नलिनी भी उसको अपराधी समझे।

नलिनी के घर की खिड़की खुली थी। वह वहाँ न थी। जब वह आँगन में मुँह हाथ धोने गया तो नलिनी नीम के नीचे बैठी धीमी-धीमी आवाज में उसका प्रिय गीत गा रही थी। वह भी शायद उसी हालत में गुजर रही थी, जिसमें सत्यं स्वयं गुजर रहा था। उसके मन में

नलिनी ने कहा "कब तक जबान को कैद रखोगे ? रिहा कर दो न ।"

"हूँ ।"

"आखिर तुम ही जीते । देखा न मैं रात को नहीं नाची ? नाचना कला हो या कुछ और, मैं अब न नाचूंगी ।"

"अरे यह क्या कह रही हो ? इतनी मेहनत से नाचना सीखा है और तुम उसे छोड़ने के लिए कहती हो ?"

नलिनी के टपाटप आँसू टपकने लगे ।

"अरे रोती काहे को हो ?"

नलिनी उसकी ओर सजल नयनों से देखती जाती थी ।

"तो क्या तुम मुझे नाचने दोगे ?" नलिनी ने थोड़ी देर बाद पूछा ।

"हाँ, हाँ, पर यहाँ नहीं ।"

"तो कहाँ ?"

"मद्रास में । हमने जो कुछ यहाँ सीखना था सीख लिया है, मद्रास में बड़े-बड़े नृत्य शास्त्रज्ञ हैं, पारखी हैं, तुम नाच सीखोगी और मैं भी कोई गुरू ढूंढ लूंगा ।"

"पर—"

"पर वर कुछ नहीं—कल तुम्हें मेरे साथ चलना ही होगा । मैंने निश्चय कर लिया है ।"

"नहीं तो"

"नहीं तो मैं कभी तुम्हारा मुंह भी न देखूंगा ।"

नलिनी हँसने लगी । "पर—"

"फिर वहीं पर । मैं चित्र बेचकर दो-चार पैसे कमाऊँगा और अगर कोई आमदनी न हुई तो फाके करेंगे, पर यहाँ न रहेंगे ।"

"न मुझे रहने दोगे ?" नलिनी मुस्कराने लगी ।

"हूँ" सत्यं ने आश्चर्य से आखें बड़ी कीं ।

"तुम सोचते हो तुम मद्रास में रहोगे और मैं यहाँ ? जहाँ तुम

वहाँ में।"

"यहाँ सड़ने से क्या फायदा ?" दोनों यकायक पद्मनाभ के वारे में सोच रहे थे।

कोई किवाड़ खटखटाने लगा, सत्यं निश्चिन्त हो अंदर चला गया, उसके पिता आए थे।

नलिनी भी अपने घर में चली गई।

बाईस

सवेरे-सवेरे सूर्य की अगवानी करने के लिये उषा न निकली थी। सत्यं नहा-धोकर मन्दिर में पहुँच गया। मन्दिर बन्द था। पिता के आने का समय अभी नहीं हुआ था। वह चम्पा, मल्लिका व अन्य फूल तोड़कर दरवाजे में रख, मन्दिर के बन्द दरवाजे के सामने आँखें मूंद कर ध्यान-मग्न बैठा था।

वह स्वभाव और परम्परा से भक्तिशील था। मन्दिर और पूजा-पाठ का व्यसन तो न था, पर भगवान पर उसे भरोसा था। भक्ति के आडम्बर से वह दूर रहता। पिता जब आये, उसे वहाँ देख वे चकित हुए। वे पिछले दिनों अपने पुत्र से बोलना चाहते थे पर सत्यं ही कुछ उदासीन रहता। वह पिता से नाखुश हो ऐसी बात भी न थी। पर खून खून ही है, परस्पर आकर्षित होता ही है।

"बेटा, मुझे जगा देते ? मैं स्वयं चाबी लेकर आजाता।" पिता ने कहा।

"आप सो रहे थे, उठाना मुझे अच्छा न लगा।" सत्यं ने कहा।

पिता की आखों में सहसा आँसू छलक पड़े। सत्यं के पिता सहृदय व्यक्ति थे। सत्यं उनमें हमेशा एक स्मृति जगाता, जो उनके मन में दीप शिखा की तरह जलती-बुझती रहती।

"भगवान् की पूजा कर लेना अच्छा है बेटा। जीवन बिना श्रद्धा के

खी नहीं हो सकता।" पिता कहते जाते थे और मन्दिर खोलते जाते थे। र्ति का अभिषेक कर, वे अपने पूजा-पाठ में लग गये। सत्यं मण्डप में ठा निरन्तर मूर्ति को देख रहा था।

कुछ देर बाद वह मन्दिर के एक तरफ बैठा गया और समुद्र में र्योदय का दर्शन करने लगा। प्रायः प्रतिदिन उसने सूर्योदय देखा था, र वह चिर नवीन था, प्रतिदिन उसका भिन्न-भिन्न आकर्षण था।

वह भी चाहता था कि सूर्योदय की तरह उसका जीवन भी चिर-वीन हो, उसका जीवन घटना-शून्य होता जाता था। वही काम, वही च्छाएँ, वही जलन, वही घुटन। वह अपने को एक विवर्त में पा हा था।

वह अब वह निकलना चाहता था—एक नदी की तरह, एक प्रकाश की करण की तरह। उसमें नया उत्साह था, वह अपने जीवन का नया ध्याय शुरु कर रहा था। भगवान् से सफलता की प्रार्थना कर हा था।

पूजा पाठ समाप्त कर वह पिता के साथ घर गया। उसने रास्ते में हा, "कोडूर में नुमाईश हो रही है, मैं जाऊँगा और जरा देर में ाऊँगा।"

"जाओ बेटा, रुपये की जरूरत हो तो अलमारी में से ले लेना।" त्यं को ऐसा लगा जैसे उसको रोना आ रहा हो।

उसके पिता खा-पीकर आदिनारायण के घर चले गये। सत्यं ने लिनी को इशारा कर नीम के पास बुलाया, "चल रही हो न?"

"आज्ञा जो है," नलिनी मुस्कराई।

"अपनी माँ से कहना कि कोडूर में नुमाईश हो रही है और तुम खना चाहती हो।"

"क्या सचमुच नुमाईश हो रही है?"

"हाँ हाँ, थैले में दो-चार कपड़े ले लेना। पैसे की फिक्र म

शाम होते-होते वे दोनों कोडूर के रास्ते पर जा रहे थे।

जाकर सत्यं ने मुड़ कर देखा। उसके सामने धुंधला क्षितिज था, टी
टीले पर मन्दिर, छोटे-छोटे खपरैल के मकान, खंडहर, आदिनारायण
दुमंजला मकान, काजू के पेड़, समुद्र की रेती और न जाने क्या-क्य
उसकी आखों में तरी आगई।

वह जल्दी-जल्दी चलता गया। चुप, विह्वल, व्याकुल। उसने f
पीछे मुड़ कर न देखा। वगल में नलिनी सिसक रही थी। उसके
यन्त्र की तरह मेड़ पर पड़ते जाते थे। ऋतुएँ वदलती हैं, वाताव
वदलता है, फसलें पैदा होती हैं, कटती हैं, पर मेंड़ स्मृति की तरह अ
अस्तित्व वनाये रखती है। सत्यं और नलिनी की स्मृतियों को अ
शरीर का आकार दिया जाता तो यह मेंड़ रीढ की हड्डी वनती।

जव वे पुल पर पहुँचे तो नलिनी ने सत्यं को, वाँह पकड़कर
दिखाना चाहा, पर सत्यं चलता गया। पुल के पास काफी भीड़-भड़
था, नुमाईश जोर पर थी। तरह-तरह की चीज़ें थीं। रंग-विरंगी रो
हो रही थी। उनके गांव के भी कई लोग थे।

वे दोनों नुमाईश में मस्त घूमे। नलिनी सत्यं के पीछे-पीछे च
जाती थी। परिचित व्यक्तियों का देख कर वे झेंप जाते। फिर श
सत्यं सोचता कि क्यों झेंपा जाय और यह सीना निकालकर च
जाता।

काफी रात हो चुकी थी। मद्रास के लिए गाड़ी आने का स
होगया था। वे उस रास्ते से गये, जहाँ उनका स्कूल था। सत्यं स्कूल
ओर तिरछी नजर से देखकर जल्दी-जल्दी आगे वढ़ गया।
की कई वातें गले तक आतीं और गले में ही रह जातीं, गला
हुआ था।

"कोडूर स्टेशन पर जान-पहिचान वाले मिलेंगे, तुम जैसे-तैसे
छुपा कर औरतों के डिव्वे में वैठ जाना, अगले स्टेशन पर मि
गनीमत है, यहाँ गाड़ी दो मिनट ही ठहरती है।" सत्य ने कहा।

वे स्टेशन पर पहुँचे। गाड़ी भी आ रही थी। जल्दी-जल्दी वे

जब गाड़ी हिली तो उन दोनों की आँखों से आसुओं की झड़ी लगी ।

न्धकार में गाड़ी मद्रास की ओर जा रही थी । उसके साथ-साथ ौर नलिनी भी परिचित प्रदेश से अज्ञात दिशा की ओर चलते े ।

तइस

"सत्यं, सत्यं,........." किवाड़ खटखटाकर कोई पुकार रह था। नलिनी ने जब किवाड़ खोला तो पद्मनाभ खड़ा था सज-धजकर, शान से।

"सत्यं नहीं है क्या ?"

"बाहर गया हुआ है।" नलिनी ने कहा।

"आता ही होगा, जरा जरूरी काम है। मैं उसे देखकर ही जाऊँगा। वह मुस्कराने लगा।

नलिनी किवाड़ के पास खड़ी हो गई। दरवाजा खुला था।

"कहो मद्रास कैसा लगा ?" पद्मनाभ ने पूछा।

"अच्छा है।"

"देखती रहो, एक बार तुम्हें फिल्मों में काम करने का मौका मि नहीं कि.........," वह अपना वाक्य पूरा न कर सका "मैं दो-च निर्माताओं से मिला भी, बड़े पहुँचे हुए होते हैं ये लोग। छाछ को कम्ब फूंक-फूंककर पीते हैं। क्यों ? क्या कहती हो नलिनी ?" पद्मनाभ आत यता दिखाने लगा।

"तुम्हारे भरोसे ही हम आये हैं।"

"फिर दक्षिणा.........?" पद्मनाभ की नीयत खराब लगती थ नलिनी कुछ न बोली। पद्मनाभ उसकी तरफ देखता रहा।

सबेरा। आठ नौ का समय था। नलिनी खाना पकाने में मशगूल थी। जबसे वे मद्रास आये थे, मौके बेमौके आता, उनको घुमाता-फिराता, सिनेमा दिखाता।

"रसोई करनी है।" नलिनी ने कहा।

"माँ को बुला लो न, नहीं तो ये मुलायम अंगुलियाँ जल-भुनकर लकड़ियाँ हो जायँगी।"

नलिनी चुप रही। पद्मनाभ जेब में अंगुलियाँ डाल, सिगरेट सुलगा, इधर-उधर चहलकदमी करने लगा। नलिनी जरा सहमी।

"किसी चीज की जरूरत तो नहीं है ?" पद्मनाभ ने मुस्कराते हुए पूछा। अगर कुछ चाहती हो तो बिना हिचकिचाये पूछ लेना। मैं कोई पराया तो हूँ नहीं। छुटपन का साथ है।

नलिनी नीची निगाह किये खड़ी रही। वह कुछ न बोली। पद्म-नाभ उसकी तरफ देखता रहा। आकर ठीक उसके सामने खड़ा हो गया।

"नहीं, हमें कुछ नहीं चाहिए, उनके आने में शायद देर हो। तुम अपना समय क्यों खराब करते हो ?" नलिनी ने कहा।

"तुम्हारे संग और समय की खराबी ? क्या कह रही हो नलिनी ?"

नलिनी बाहर खड़ी हो गई।

"जैसी तुम्हारी मर्जी, नाखुश न हो।" पद्मनाभ सिगरेट का धुँआ उड़ाता-उड़ाता चला गया।

नलिनी किवाड़ के सहारे आँसू बहाते-बहाते बैठ गई। पद्मनाभ की नीयत वह जानती थी। वह उससे अक्सर इधर-उधर की बातें करता, लालच-लगाव दिखाता, सत्यं को भी बुरा भला कहता।

मद्रास आकर उन्होंने तेनामपेट में एक छोटा-सा मकान ले लिया था। एक तंग कमरा, छोटी-सी रसोई, छोटा-सा बराण्डा, आँगन जरा बड़ा था। कोत्तपटनं की तरह उनका यह घर बड़ा विचित्र था। कभी किसी रईस के घोड़े वहाँ बंधते होंगे, अब उनकी तरह पाँच-छः बद-किस्मत परिवार उस मकान में रहते थे। कोई किसी स्टूडियो में बढ़ई

था, कोई एक्स्ट्रा, कोई ज्योतिषी, कोई बेकार। चारों ओर थोड़ी खाली जगह थी, नारियल के पेड़, फिर एक बड़ा बंगला, जिसमें कोई व्यापारी रहा करता था। पहिले वह बंगला किसी जमींदार का था, पुराने ढंग का था, बंगले के लिये अलग फाटक था।

इस छोटे-से मकान के लिए जहाँ वे धूप-वर्षा से बचाव कर लेते थे, वे २० रुपये किराया दे रहे थे। आये हुये एक महीना हो गया था। सत्यं घर से कुछ रुपया ले आया था, उसी से गुजारा करने की कोशिश हो रही थी। यह मकान भी पद्मनाभ ने दिलवाया था।

उस मोहल्ले में तेलुगु बोलने वाले काफी संख्या में हैं। उनमें अधिकांश या तो स्टूडियो में काम करते हैं या काम की तलाश में स्टूडियो वालों के इर्द-गिर्द चक्कर काटते हैं। उसी मोहल्ले में दो बड़े-बड़े स्टूडियो हैं। पद्मनाभ भी आजकल उनमें से एक स्टूडियो में काम कर रहा था। उनको यह जानने में देर न लगी कि वह उतना बड़ा न था, जितना लोगों ने उसको कोत्तपटनं में बना दिया था, या वह खुद बनता था। पर उसको किसी चीज की कमी न थी। काम मिलता ही था, अच्छी आय समझी जाती थी। मद्रास में भी उसकी अपनी टोली थी, वेन्कटेश्वरुलु अब उसका सक्रिय सदस्य था।

मद्रास आते ही, सत्यं को पद्मनाभ अपने स्टुडियो में ले गया। पद्मनाभ ने कहा कि उसने बहुत कोशिश की पर चित्रकार के लिये जगह खाली न थी, अगर मजदूरी के हिसाब से उसने सेट पर काम करना चाहा तो उसको काम दिलवा देगा, सत्यं ने साफ इनकार कर दिया।

सत्यं काम की तलाश में था, सवेरे चला जाता और शाम को थका मांदा आता, निराश, खिन्न। यह रोज-मर्रे का काम हो गया था। शनिवार और रविवार को ही अपने चित्र बनाता। उसने चित्रकारों की जीवनियाँ पढ़ी थीं। वह उनके संघर्ष से परिचित था, अपने को वह ढांढ़स देता।

सत्यं ने बहुत दौड़-धूप की। जहाँ चित्रकारों की जरूरत थी, वहाँ

चित्रकार पहले से ही थे, और वह चित्रकार के सिवाय कुछ न होना चाहता था। दो-चार चित्र बेचने की कोशिश की, पर बिना परिचय-प्रसिद्धि के चित्र बेचना भी मुश्किल था।

एक परिचित चित्रकार ने आश्वासन दिया कि वह चौधरी साहब के पास ले जायगा। चौधरी साहब अच्छे विख्यात चित्रकार हैं। सैंकड़ों शिष्य हैं, प्रतिष्ठित व्यक्ति हैं। उनकी सिफ़ारिश से किसी को कहीं भी नौकरी मिल सकती थी, सहृदय व्यक्ति समझे जाते थे। दुर्भाग्य की बात यह कि वह चित्रकार आश्वासन देने के बाद खुद बेकार हो गया। चित्रकारों का भाग्य अजीब होता है।

सत्यं नलिनी को नित्य कहता कि वह उसे अड़यार के नृत्य-कला शाला में भरती करा देगा। वे अड़यार गए भी। दो-तीन मील का रास्ता था। नलिनी भरती भी हो सकती थी, पर पैसे की तंगी थी, उन्होंने दो एक महीने प्रतीक्षा करने की ठानी।

नलिनी कभी-कभी घर में रसोई करती थी। यहाँ भी करने लगी। दो तीन मिट्टी के बर्तन खरीद लिए थे, एक ही बार शाम-सवेरे के लिए खाना तैयार होता था,। नलिनी के पास दो-तीन गहने भी थे, ये उसने बेच-बाच दिए थे। दस-ग्यारह रुपये पद्मनाभ के उधार भी हो गये थे।

रात-दिन वह भगवान् को मनाया करती कि शीघ्र ही वह भी काम-काजी नर्तकी हो जाय। कभी-कभी माँ को याद कर वह आँसू भी बहाती, चुड़ैल हो या गुसैल, माँ मां ही है।

मद्रास आखिर उतना सुनहरा न था, जितना कि उन्होंने उसे सपनों में पाया था।

चौबीस

सत्यं चार बजे के करीब घर आया तो पद्मनाभ बाहर चहल-कदमी कर रहा था। घर का दरवाजा बन्द था।

"अरे भाई, बाहर क्यों घूम रहे हो ?"

"अन्दर जाने की मुमानियत है।" उसने मुस्कराते हुए कहा।

सत्यं के किवाड़ खटखटाते ही नलनी ने किवाड़ खोला। सत्यं उसको चटाई की टट्टियों की आड़ में ले गया। नलिनी के हाथ में उसने पचास रुपये रखे, वह सहसा उछल पड़ी। छत की ओर देखने लगी। "छत तो ठीक है, कहीं नहीं फूटी है।" नलिनी ने हंसते हुए कहा, "भगवान शायद रोशनदान के रास्ते आए थे।" नलिनी को कहावत की तोड़-मरोड़ करता देख सत्यं मुस्कराता रहा। फिर उसने पूछा, "पद्मनाभ को बाहर ही क्यों खड़ा कर दिया है ?"

"मुझे तो मालूम नहीं कि वह आया हुआ है।"

"मैंने ही बुलाया था। तुम्हें नाच सिखाने का प्रबन्ध करना है।"

नलिनी और सत्यं चटाई की आड़ से आकर खुशी-खुशी नीचे बैठ ये। वे एक दूसरे की तरफ देख रहे थे और पद्मनाभ उन दोनों ओर।

"क्यों भाई, आज इतने खुश क्यों हो रहे हो ?" पद्मनाभ ने पूछा।

"क्यों न हो भाई, इतने दिनों बाद भाग्य जगा है।"

"हूं...."

"मैं चित्र वेचने के लिए अड्यार में फिर रहा था, वड़े-वड़े रईस रहते हैं वहाँ। पांच छः वंगलों में गया, कहीं दरवान ने अन्दर ही जाने न दिया, जहाँ अन्दर गया तो उन लोगों ने नंगी तस्वीरें मांगी, मैं भला उनके लिए नंगी तस्वीरें कहाँ से लाता ? एक-दो ने कहा कि उन्हें चित्रों में दिलचस्पी ही नहीं है। सड़क की नुक्कड़ में एक छोटा सा वंगला है, वे सज्जन आन्ध्र के ही हैं, शायद कोई खानदानी जमींदार हैं। उन्होंने एक चित्र खरीद लिया। दाम पूछे मैंने कहा पचास रुपये, उन्होंने तुरंत जेव से निकालकर दे दिये।"

"ऐसे आदमी कम ही होते हैं।" पद्मनाभ ने कहा।

"कोई भले आदमी लगते हैं, पढ़े-लिखे, शौकीन शख्स मालूम होते हैं। उन्होंने कहा कि कोस्मोपोलिटन क्लव में मिलना, मैं वहाँ पांच-दस दोस्तों से मिला दूंगा। वे शायद तुम्हारी मदद करें। यह कोस्मो-पोलिटन क्लव कहाँ है ? पद्मनाभ, क्या है यह ?"

"माउण्ट रोड पर, 'प्लाजा' (एक सिनेमा हाल) की वगल में, पोस्ट आफिस के सामने, वड़ी-सी विल्डिंग, वड़े-वड़े पेड़, सुन्दर फुलवारी, वड़े रईसों की क्लव है, जाओ जाओ, जरूर जाना।"

"कल चलेंगे, अरे तुम जानते हो कि नहीं, अपने कोडूर जमींदार का मकान भी अड्यार में है। अच्छा वड़ा मकान है। दो कारें हैं, लगता है वे यहाँ आ गए हैं।"

"हाँ हाँ, जानता हूँ, क्यों नहीं आयेंगे ? सरकार ने जमींदारी ले ली है। गांव में कोई पूछने वाला नहीं, न पुरानी शान न पुरानी हैसियत आजकल लगभग सभी जमींदार यहाँ हैं।"

"उनको भी चित्रों का शौक है। एक वार उन्होंने दो चित्र मेरे खरीदे थे।"

"अव तो उनका शौक कुछ और है। अरे और तो और [illegible]-नारायण भी यहाँ है, फिल्म वनाना चाहता है।"

"उन्हें भी शौक हो गया है ? या अपने लड़के के लिए कोशिश कर रहे हैं ?"

"शौक तो क्या······पैसा बनाने की धुन है। लोगों का ख्याल है कि फिल्मी दुनिया में भाग्य ने साथ दिया तो कंकाल भी कुबेर बन जाते हैं। सब अपना भाग्य आजमाना चाहते हैं। सारा काम मुझे दिया है। कलाकारों की तलाश में हूँ। देखें क्या होता है ?"

"तो क्या वेन्कटेश्वरूलु भी ऐक्टिंग करेगा ?"

"वाह वाह, क्यों नहीं ? कहानी ऐसी लिखी जाएगी कि वह भी खप जाए। हम सबको शायद मौका मिले।" नलिनी पद्मनाभ की ओर देखने लगी। वह फिल्मों की शौकीन मन थी। उसके मन में उथल-पुथल होने लगी।

"आजकल तो नाटक नृत्य का जमाना गया। लोग फिल्मों पर लट्टू हुए हैं।"

"खैर, तुम बाहर चहल-कदमी क्यों कर रहे थे, किवाड़ जो खट-खटा देते ?" नलिनी ने मुस्कराते हुए कहा।

"जब स्त्री घर में अकेली हो, किवाड़ खट-खटाना नहीं चाहिए। फिर इसके (सत्यं के) आने का वक्त भी हो गया था। क्यों, क्या कहते हो ?" पद्मनाभ ने नलिनी और सत्यं को तिरछी नजर से देखते हुए कहा।

"चलो उस स्कूल तक हो आएँ, नहीं तो वह बन्द हो जायेगा। आज पैसा हाथ में है, नलिनी को भरती करवादें," सत्यं ने कहा।

"आज सवेरे टैक्सी में उस तरफ गया था, वहाँ दो-चार सिनेमा वाले भी रहते हैं, मैंने सोचा कि रास्ते में स्कूल भी देख जाऊँ, वहां की अध्यापिका से मेरी जान-पहचान है, बहुत कहा पर उसने मेरी न सुनी। कहती थी शुल्क में किसी प्रकार की रियायत नहीं की जा सकती। अगर एक को रियायत दी नहीं कि सब के सब मांगने लगेंगे।" पद्मनाभ ने कहा।

ऐसा बनाया कि आज लखपति हैं, कई शानदार क्लबों के सदस्य हैं।

उन्होंने सत्यं को बैठक में बिठाया। बैठक भड़कीले तरीके से सजाई गई थी। कुर्सियाँ इतनी बड़ी और गद्देदार कि आदमी छुप-सा जाता था। दीवारों पर बाप-दादाओं के बड़े-बड़े चित्र थे। दीवार के सहारे पाँच-छ: अलमारियां थीं। उनमें अच्छी-अच्छी मोटी किताबें रखी हुई थीं, जैसे वे कोई फर्नीचर हों।

"हाँ तो तुम्हारा इन जमींदार साहब से कब परिचय हुआ ?" श्री चेट्टियार ने पूछा।

"अभी दो-चार दिन पहिले ही। मैं उनके घर चित्र दिखाने चला गया था।"

"कुछ खरीदे भी ? वे, सुना है दिवालिये हो रहे हैं।"

"हाँ, उन्होंने एक चित्र खरीदा भी था। खानदानी आदमी मालूम होते हैं।"

"क्या खानदान है ! बपौती पर जिन्दगी बिताना कोई बड़ी बात है ? खुद कमाओ और खर्चो तब होगी खानदान की परख।" चेट्टियार चित्र देखते जाते थे। कुछ सोचकर उन्होंने कहा, "वैसे वे भले आदमी हैं। कितने में खरीदा था ?"

"पचास रुपये में।"

श्री चेट्टियार ने दो चित्र चुन लिये.........दोनों चित्र सत्यं को भी खूब भाते थे। उन्होंने दो सौ रुपये के नोट देते हुए कहा, "काफी है न ? अपने जमींदार साहब से भी कहना।"

जमींदार और उनका आपसी रिश्ता कुछ भी हो सत्यं को चेट्टियार कला-प्रिय और पारखी लगे। उसने दीवार पर टंगे चित्रों को देखकर कहा " मैं भी इस तरह के चित्र बना सकता हूँ।"

"मैंने जितने चित्र बनवाने थे, बनवा चुका हूँ। अगर कभी जरूरत हुई तो तुम्हारे पास भी खबर भिजवाऊँगा।"

"किसी मित्र वगैरह से........."

"अच्छा" वे कुछ देर तक सोचते रहे। "हमारे एक रिश्तेदार नारायण चेट्टियार हैं। शायद उनको चित्रों की जरूरत हो। उनके पास जाना। मैं चिट्ठी लिखे देता हूँ। मिलते रहना।" श्री चेट्टियार ने चिट्ठी लिखकर दे दी। सत्यं उससे बड़ा प्रभावित हुआ।

खुशी-खुशी वह घर गया। वहां उसके मकान के सामने एक छोटी कार खड़ी थी। उसके अन्दर आदिनारायण और वेंकटेश्वरलु आदि बैठे थे। मकान का दरवाजा खुला था। किवाड़ के पीछे नलिनी खड़ी थी, और बरामदे में खम्भे के सहारे पद्मनाभ।

"अरे, बड़े खुश नजर आते हो।" पद्मनाभ ने पूछा।

"दो चित्र और बिक गये हैं।"

"भाग्य जग रहा है। एक बड़ा मकान ले लो, पैसों की फिक्र न करो। पांच-दस देखने वाले आते-जाते रहें, तो कारोबार बढ़ता है। यह शहरी तरीका है। चाहे पास कुछ भी न हो, ठाट-बाट से रहो तो पैसा भी ढूँढता-ढूँढता आजाता है, यहाँ कौन आयेगा? देखो, जो चीज छोटे होटल में बिकती है वही चीज बड़े होटल में बिकती है, पर दाम में दुगना तिगुना फर्क रहता है। यही लोग जो आज तुम्हें पचास रुपये देते हैं तुम्हारे घर आकर पांच सौ रुपये दे जायेंगे। यहीं रहोगे तो कोई न पूछेगा। आदिनारायण भी घर के अन्दर आते हुये झेंप रहे हैं।"

"झेंप रहे हैं तो जाने के लिए कह दो।" सत्यं ने झुँझलाते हुये कहा।

"अरे, काम अपना है गरम मत हो। गरम होने से भी क्या फायदा अगर खुद ही जलना पड़ जाय।" पद्मनाभ ने कहा।

घर के अन्दर जाकर सत्यं ने नलिनी को दो सौ रुपये दे दिये नलिनी बड़ी प्रसन्न हुई। उसने सुन रखा था कि चित्रकारों को अक्सर भूखों मरना पड़ता है, पर सत्यं के भाग्य अच्छे लगते थे। कपड़े, खाने पीने की तंगी जरूर थी, कई बार फाके भी करने पड़े थे, भूख से मरने की नौबत न आई थी। नलिनी ने रुपयों को सन्दूक की तह में रख

हुए कहा, "क्यों तुम ख्वाहम-ख्वाह गरम होते हो ? पद्मनाभ ठीक ही तो कह रहा है।"

"मैंने कब कहा कि गलत कह रहा है ?" उसने बाहर आते हुए कहा। पद्मनाभ आदिनारायण से कुछ कह रहा था। सत्यं को देखते ही वह उसके पास आगया और कार चली गई। आदिनारायण सत्यं को देखकर मुस्करा रहे थे।

"इन्होंने कार कब खरीदी ?" सत्यं ने पूछा।

"फिल्म बनाओ या न बनाओ, पर जो कोई फिल्म बनाना चाहे, उसका पहिला काम यह है कि वह कार खरीदे, नहीं तो कोई नहीं पूछेगा। न स्टूडियो वाले, न एक्टर, न एक्जिहिबिटर। यहाँ काम करने का यही तरीका है, यही तो मैं तुमसे कह रहा था। अब मकान बदल लो यार, पास में ही अच्छा मकान है, चाहो तो मेरे मकान में रहो, तुमने तो यों ही जिद पकड़ रखी है।"

"खैर, आये क्यों थे ?"

"ये चाहते हैं कि नलिनी उनकी फिल्म में नाचे, इसी बारे में तुमसे बातें करने आये थे, पर मैंने कहा कि मैं सब देख लूंगा, वे फिक्र न करें।"

"नलिनी क्या कहती है ?"

"नलिनी तो चाहती है। उसे नाचने का शौक है और फिल्मों का भी।"

"देखा जायेगा।"

"अच्छा तो मैं फिर कभी मिलूँगा। जरा काम है।" पद्मनाभ जल्दी-जल्दी चला गया, जैसे उसकी कोई इन्तजार कर रहा हो। आदिनारायण फाटक के पास उसकी प्रतीक्षा कर रहे थे।

"तुम्हारी क्या राय है ?" नलिनी ने उसकी बांह पकड़कर पूछा।

"सोच रहा हूँ। यह बड़ी नाजुक बात है। मुझे गलत मत समझना। सुनते हैं फिल्मवाले नृत्यकला को हलाल कर देते हैं। अश्लील

भाव-भंगिमा का प्रदर्शन करने में अपनी प्रतिभा दिखाते हैं। दो-चार पैसे जरूर मिल जाते हैं, पर उसके लिए बड़े दाम देने पड़ते हैं, समझीं ? फिर यह इनकी पहली फिल्म है और जब तक पूरी बन नहीं जाती, तब तक कहा नहीं जा सकता कि यह कभी पूरी होगी कि नहीं। अगर पहले फिल्म में तुम्हारा नृत्य ठीक न हुआ तो तुम्हें कोई और अपनी फिल्म के लिये लेगा नहीं। यह ही सोच रहा हूं।"

"तुम सोचते रहोगे और यहाँ मौका हाथ से निकल जायेगा।" नलिनी ने रोनी-सी सूरत बना कर कहा।

"अगर तुम नाच अच्छी तरह सीख गई तो और भी मौके मिलेंगे। अरे हाँ, पद्मनाभ से मास्टर के बारे में पूछना ही भूल गया।"

नलिनी लम्बा-सा मुँह बना कोने में बैठ गई।

"देखो, तुम मुझे गलत समझ रही हो।"

नलिनी चुप रही।

"आज तो तुम्हें खुश होना चाहिये। भगवान् ने दो सौ रुपये दिये हैं। सचमुच यह मद्रास अजीब जगह है, जब पैसा बरसता है, तो खूब बरसता है नहीं तो एक-एक बूँद के लिए भी लाले पड़ते हैं।"

सत्यं नलिनी को मनाने के लिये उस दिन सिनेमा ले गया। उसे कुछ नये कपड़े भी खरीद कर दिये।

[illegible]

"तुम घर वापिस चले चलो। यह एक ब्राह्मण के लिए अच्छा नहीं कि इस तरह अपना जीवन व्यर्थ करे। बाप दादाओं की वृत्ति ही भली। जब आना ही था तो कम-से-कम बताकर तो आते। माँ नहीं है यह सोच खूब लाड-प्यार से पाला था, क्या उसी लाड-प्यार का यह बदला है?" सत्यं के पिता नारियल के पेड़ों के नीचे एकान्त में समझा रहे थे।

सत्यं यकायक सिसकने लगा। वह पिता को जवाब दे सकता था, बहुत दिनों से जवाब सोच भी रखा था, पर उनके सामने वह कोई जवाब नहीं पा रहा था। उसका पुत्र-सुलभ वात्सल्य फिर उमड़ आया था। उसके पिता ने उसे क्या नहीं दिया था? जो कुछ उनके पास था, उन्होंने दिया और उन्होंने वह भी दिया जो अक्सर साधारण पिता नहीं देते हैं······छूट। उसने जो चाहा था सो पाया था।

"रोते क्यों हो? मालूम है कितनी बदनामी हो रही है। जब तक तुम कोत्तपटनं में थे, मैंने कोई परवाह न की। अब तुम यहाँ हो, लोगों के ताने-तश्नों का निशाना मुझे बनना पड़ता है। [illegible] कोई मुझे ही अंगुली उठाकर दिखाता है, कानाफूसी करता है [illegible] नारायण का सहारा भी जाता रहा, वह पागल हो यहाँ आ [illegible]। बड़ा मकान सुनसान पड़ा है, मन्दिर में भी लोग न [illegible] या है।

यह सब मुझे झेलना पड़ रहा है।"

सत्यं हिचकियां भर-भर कर रोने लगा।

"यह भी क्या काम है? शायद यह मेरी गलती है। मुझे इतनी छूट नहीं देनी चाहिए थी? जो हुआ सो हुआ, अब घर चलो।"

सत्यं रोता जाता था।

"रोने से क्या फायदा? मैं जाता हूँ, जाने के लिए तैयार रहो। भला वेश्या के साथ कोई ब्राह्मण का लड़का रहता है? सोच-सोच कर दिल दहल उठता है। बड़े हो गये हो। कुछ तो समझ होनी चाहिए। पुराना खानदान है, बाप दादाओं का भी ख्याल न रहा।" अनन्तकृष्ण शर्मा कहते जाते थे।

सत्यं शायद इस तरह की भर्त्सना के लिए तैयार था, वह प्रेमपूर्ण प्रेरणा को सह न पाता था, भावुक-हृदय था, अपने को सहसा अपराधी समझने लगता था। वह झट बोल उठा, "अब मेरा यहाँ काम-धन्धा चल पड़ा है। लोग पहिचानने लग गये हैं। कुछ आमदनी भी हो जाती है।"

"कोत्तपटनं में भी तो आमदनी के रास्ते हैं।"

"हैं तो, पर मैं चित्र बनाकर वहाँ एक पैसा भी नहीं कमा सकता।"

"पर अपना पेशा जो है? भूखों तो वहाँ कभी नहीं मरे।"

"पर मुझे वह पेशा पसन्द नहीं है।"

"क्यों पसन्द आयेगा? बुरी सोहबत में हो। जब आंखें खुलेंगी तब पता लगेगा। मैंने सोचा था कि बचपन का मेल-मिलाप है, बचपन के साथ ही खत्म हो जायेगा, मुझे स्वप्न में भी ख्याल न था कि तुम इस तरह दीवाने बने फिरोगे। तो क्या तुम कोत्तपटनं वापिस न आवोगे?"

"मुझे वापिस जाने में कोई फ़ायदा नज़र नहीं आता।"

"फायदा नजर नहीं आता? घर जाने में भी क्या कोई फायदा नजर आना चाहिये? क्या नजर आएगा? तो क्या तुम इसी औरत के

साथ रहोगे ?"

सत्यं कुछ न बोला। पर उसकी भाव-भंगिमा से स्पष्ट था कि वह पिता के सुझाव को मानने के लिए तैयार न था।

अनन्तकृष्ण शर्मा आंसू बहाने लगे। बड़ी-बड़ी बूंदें चेहरे की झुर्रियों से टकराकर तेज हो जातीं और ठप से नीचे गिरतीं। उन्होंने अपना मुँह एक तरफ फेर लिया। सत्यं भी उनकी ओर देख न पाता था। थोड़ी देर बाद उन्होंने सम्भलते हुए पूछा, "तो नहीं आओगे ?"

सत्यं ने अस्वीकृति में अपना सिर हिला दिया।

"पर मैं कहे देता हूँ बेटा, अगर तुमने इस छोकरी से विवाह किया तो तुम मुझे जीवित न पाओगे। शाम तक अच्छी तरह सोच लो, मैं फिर आऊँगा।" वे सिसकते-सिसकते चले गये।

सत्यं भी रोता-धोता घर में आ गया। नलिनी रसोई में थी, वह चटाई पर लेट गया। उसके सामने समस्या थी, पिता का वात्सल्य उसको खींच रहा था और उसका प्रेम नलिनी की ओर खींचता था। सत्यं पिता की नापसन्दगी की अवहेलना करता आया था पर आज उनके वात्सल्य ने उसको झकझोर दिया। उसने निश्चय किया था कि वह कोत्तपटनं कभी वापिस न जायेगा, पर आज वह अपने निश्चय पर डांवाडोल था।

वह इधर-उधर करवटें लेता, "क्या अच्छा होता, यदि मैं पहले ही नलिनी से विवाह कर लेता ? बदनामी भले ही होती, कोई परवाह नहीं, पर लोगों की जबान बेलगाम हो ऊटपटांग तो न बका करती। विवाह के लिए अब पिता के जीवन की आहुति देनी होगी। यह बहुत बड़ा मूल्य है, प्रतीक्षा की जा सकती है। आखिर जल्दी ही क्या है ?" सत्यं ने आंखें पोंछते हुए करवट बदली, "पर विवाह न किया तो क्या नलिनी नाखुश न होगी ? वह विवाह के लिए कहती आ रही है।" उसके मुख से एक आह निकली और वह यकायक उठकर बैठ गया।

"मुझे जरा काम है, मैं बाद में आऊँगा।" उसने नलिनी से कहा।

"भोजन करके चले जाना, तैयार हो गया है। तुम्हारे पिताजी क्या कहते थे? वे इतने पवित्र भी क्या हैं कि घर में पैर तक न रखा?" नलिनी ने पूछा।

सत्यं को चुप देखकर नलिनी ने पूछा, "क्या कहते थे?"

"क्या बताऊँ?" उसने जैसे तैसे भोजन निगल लिया। वह अड्यार नदी के किनारे घूमने निकल गया, जब कभी उसे कोई समस्या सताती थी, वह अक्सर घूमने निकल जाता था। उसने घूमते-घूमते समय काट दिया पर वह अपनी समस्या सुलझा न पाया। वह शायद और भी उलझ गई थी। अन्धेरा हो चला था, वह घर वापिस आगया।

घर के पास पहुँचा ही था कि वह यकायक चौंका, नलिनी की मां कांचना अपना बोरिया-बिस्तर लेकर आ गई थी। वह नलिनी को गले लगाये हुई थी। वह रो रही थी, "कम-से-कम चिट्ठी तो लिखती कि कहाँ थी। मैं पहले ही चली आती। इस छोकरे की बदौलत मुझे यह मुसीबत भी झेलनी थी।" वह रोती जाती थी, पद्मनाभ पास खड़ा था।

"एक्सप्रैस से आ रही हैं? मैं लिवा लाया था," पद्मनाभ ने कहा।

"पर तुम्हें कैसे मालूम कि ये आ रही थीं?"

"इन्होंने चिट्ठी लिखी थी," कुछ सोचकर, "हाँ हाँ वह जरूर है कि मैंने इनको नलिनी के बारे में लिखा था। वैसे ही बीमार औरत है, बेचारी लड़की की याद में मर मरा जाती" सत्यं को घूरता देख "तुम्हारे लिए भी तो अच्छा है। नलिनी घर के काम-काज में लगी रहती है, नाच सीख नहीं पाती। अब उसकी माँ रसोई कर दिया करेगी और नलिनी को नाच सीखने का समय मिल सकेगा।"

"तो क्या तुमने मेरे पिताजी को भी लिखा था?"

"हाँ हाँ, मद्रास आना कोई गुनाह तो नहीं है, फिर भी......"

"बड़ी मेहरबानी की तुमने," वह अन्यमनस्क-सा पिताके बारे में

सोच रहा था। उनके आने का समय हो गया था। नलिनी अपनी मां से बातें कर रही थी, पद्मनाभ भी उनकी बातों में शामिल हो गया। सत्यं नारियल के पेड़ के नीचे जाकर बैठ गया। वह कांचना को देखना तक न चाहता था। इतने में उसके पिता आ गए।

"क्यों, क्या सोचा है बेटा ? चल रहे हो न ? मेरी बात मान जाओ।" सत्यं चुप था, "इकलौते लड़के हो, छोड़कर रहा भी नहीं जाता। कोत्तपटनं चले चलो, उठो।"

सत्यं उठ गया। जब वह घर गया तो पद्मनाभ कांचना से कुछ कह कर फाटक की ओर जा रहा था।

"जाओ, अपना सामान ले आओ। बात मान जाओ, जो हो गया सो हो गया। यहाँ इस तरह रहना अच्छा नहीं है बेटा !"

"पर पिताजी, मैं अकेला नहीं आ सकता। मैं नहीं चाहता कि आपका दिल दुखाऊँ। पर मेरे सामने भी तो कोई रास्ता नहीं।"

"तो तुमने तय कर लिया है ?" पिता की आँखें डबडबा गईं।

"और मैं कर भी क्या सकता हूँ पिताजी ?"

"खैर और सोच लो," वे सिसकने लगे, "कभी रुपये-पैसे की ज़रूरत हो तो चिट्ठी लिखना। पर······" वे अपना वाक्य पूरा न कर पाये, वे फ़ाटक से बाहर चले गये।

समय में वैसे स्थल पर चित्र न बनाता, पर लाचारी थी।

वह किसी फोटो की नक्ल करके एक बड़ा चित्र तैयार कर रहा था। किसी सेठ का काम था। उसके लिए न अधिक कल्पना की आवश्यकता थी, न चातुर्य व कला की ही। इस तरह के काम सत्यं को प्रायः मिल जाते थे। घर-बार चलाना था, थोड़ी-बहुत आमदनी हो जाती थी। फाके की नौबत न आती। सत्यं सौभाग्यशाली था, वरना वह भी और चित्रकारों की तरह एकादशी करता फिरता।

समय मिलने पर वह अपने चित्र बनाता। उसके दो-तीन चित्र प्रदर्शिनी में प्रदर्शित हुए थे। उन पर समाचार पत्रों में टिप्पणी निकली थी। अन्यत्र भी प्रशंसा हुई थी। श्री चौधरी का परिचय हो गया था और उनके द्वारा वह नगर के और चित्रकारों के सम्पर्क में भी आ गया था।

उसको काम मिलने लगा था, आय भी बढ़ गई थी और आय के साथ खर्च भी बढ़ते जाते थे। वह नलिनी की इच्छाओं पर आपत्ति न करना चाहता था, अधिकार चलाना उसके स्वभाव में न था। उसके सामने एक आदर्श था, उसको इसकी परवाह न थी कि कोई उस आदर्श की प्रशंसा करता है कि नहीं। वह चाहता था कि दूसरे भी अपने आदर्शों पर चलें, अगर वे न चलते थे तो उसको कोई शिकायत न थी।

वह चाहता था कि नलिनी 'भरत-नाट्य' या और कोई परम्परागत नृत्य-शैली सीखे। न मालूम कि और लोगों की प्रेरणा से या अपनी इच्छा से, नलिनी फिल्मी नृत्य सीखने लग गई थी। फिल्म देखने का शौक उसे पहिले ही था, मद्रास आकर तो वह एक्टिंग करना चाहती थी। यह उस में नया परिवर्तन था, जो सत्यं को सर्वथा न भाता था। इस पर उसके साथ दो-चार बार झपट भी हुई, पर आखिर सत्यं ने उसकी इच्छा मान ली। अब रोज एक नृत्य शिक्षक आता था। वह [illegible] का चुना हुआ था। वह किसी स्टूडियो में काम करता था। उसके आने-जाने का कोई निश्चित समय न था।

सत्यं ने नलिनी को सन्तुष्ट करने के लिये कोई कसर न छोड़ रक्खी थी, उसने दुनिया से किनारा कर रखा था और नलिनी ही उसके लिये एक सहारा थी।

चित्र वनाते-वनाते उसने करीव-करीव निश्चय कर लिया था, वह अपना वसेरा वदल लेगा। वह मकान के भाड़े के लिये कम-से-कम चालीस-पैंतालील रुपये खर्च कर सकता था। यद्यपि आय का स्थायी व निश्चित स्रोत नहीं था, तो भी उसमें एक प्रकार का आत्म-विश्वास पैदा हो गया था, भगवान् पर भरोसा भी था।

चित्र पूरा होने को था कि पद्मनाभ भागता-भागता आया। वह आजकल अक्सर आया-जाया करता था। सत्यं के कार्य में दखल जरूर होता, पर पद्मनाभ के आने-जाने में उसे खास आपत्ति न थी। समय-समय पर वह उनकी भरसक मदद भी करता।

"यार, तुम वहुत ही किस्मत वाले हो," पद्मनाभ ने उसके हाथ से व्रश लेते हुए कहा, "या यह कहूँ कि नलिनी किस्मत वाली है।"

"क्यों क्या वात है ?" सत्यं ने पूछा।

"अपने कोडूर के जमींदार को भी फिल्मी पागलपन चढ़ गया है। आदिनारायण ने उनसे वातचीत की। अव वे भी फिल्म पर पैसा लगा रहे हैं। कोई साझा है। हमें अव पैसे की तंगी न होगी। काम चालू हो जायेगा। है यह आदिनारायण चलता पुरजा।"

"शायद शहर की हवा लगी है।"

"पर जैसे आदिनारायण की शर्त है, वैसे जमींदार साहव की भी है। आदिनारायण चाहता है कि उसके लड़के को पार्ट दिया जाय और जमींदार साहव चाहते हैं कि नलिनी का उसमें भरत-नाट्य हो। वे फिल्मी नृत्य नहीं चाहते, पर आजकल भरत-नाट्य देखने वाले हैं कहाँ ?"

"हैं क्यों नहीं ? सच तो यह है कि फिल्मों में भरत-नाट्य करने वाला ही नहीं है।"

"मुझे भरत-नाट्य के बारे में कुछ नहीं कहना है, पर इस भोंदू वेन्कटेश्वरुलु को कैसे जगह दी जाय ?"

सत्यं कुछ सोचता-सा नजर आता था।

"नलिनी भी फिल्मों में काम करना चाहती है और वह चमकेगी भी।" पद्मनाभ ने कहा।

सत्यं सोचता जाता था।

"जमींदार साहब ने कहा है कि वे भरत-नाट्य का शिक्षक भी भेज देंगे। इस तरह नलिनी सीख भी जायगी और काम भी निकल आयेगा। कोई खर्च वगैरह भी नहीं होगा। किस्मत की बात है।"

"हमें एक बड़ा मकान चाहिए। यहाँ तो काम करना मुश्किल हो रहा है।" सत्यं ने कहा।

"तुम्हारे कहने की देरी थी, मकान मिलने में क्या रखा है ? जमींदार साहब के ही कई मकान हैं।" पद्मनाभ मुस्कराने लगा।

"पर हमें जमींदार साहब का मुफ्त मकान नहीं चाहिए। यह दान हम नहीं चाहते। कोई और ढूँढ़कर बताओ।"

"फिक्र न करो, मकान तो कई मिल जायँगे। तुम काम कर रहे हो तो करो।" पद्मनाभ जाकर कांचना से काफी देर तक बातें करता रहा।

अट्ठाईस

तेनामपेट में ही एक अच्छा मकान मिल गया था—दुमंजला, नीचे कोई सिनेमावाले ही रहते थे। मकान के चारों ओर छोटा-सा बगीचा था। शान्त जगह थी, प्रायः सभी सुभीताएँ उसमें मौजूद थीं।

सत्यं का कार्य दिन-प्रति दिन बढ़ता जाता था। वह अक्सर घर से बाहर ही रहता और नलिनी नृत्य सीखने में व्यस्त रहती। जमींदार द्वारा नियुक्त शिक्षक भी रोज आता। हमेशा घर में जलसा-सा लगा रहता। कांचना तो, ऐसा लगता था, किसी नई दुनिया में ही आ गई हो।

पद्मनाभ भी किसी बहाने आता रहता। कभी सत्यं से बातें करने, कभी कांचना से गुपतगू करने, कभी नलिनी के दर्शन करने। वह काफी पैसा बनाता था, पर कभी घर वाला न हुआ था। बदनाम भी था। पत्र-पत्रिकाओं में भी उसके बारे में अफवाहें उड़तीं।

आज सवेरे ही वह आ गया था। सत्यं किसी सेठ साहब के घर गया हुआ था। वह कांचना से कह रहा था, "अच्छा मौका आया है, जब किस्मत दरवाजा खट-खटा रही हो, दरवाजा बन्द रखना बेवकूफी है।"

"क्यों बेटा, क्या बात है?" कांचना ने मीठे स्वर में पूछा, वह अक्सर पद्मनाभ से इस तरह बातें करती, जैसे वह कोई आत्मीय हो।

नाभ की वह प्रशंसा किया करती। कई बार तो वह यह कहती भी नी गई कि "आदमी हो तो पद्मनाभ जैसा हो।"

"तुम्हारी लड़की तो यों ही जिद किये बैठी है, वरना अब तक महल न जाते।"

"मैं भी यह ही कहती हूँ। एक ब्राह्मण पर बावली हुई-हुई है, से वाला होता, तब भी कोई बात थी। इसी उम्मीद में जिन्दगी काट ही हूँ कि कभी नलिनी सोने से तुलेगी। हां बेटा, किस्मत की क्या ात है ? कहो।"

"मैं अभी कोडूर जमींदार साहब के पास गया था। -जानती ही हो आजकल यहाँ ही रहते हैं।"

"वाह, क्यों नहीं जानूंगी ?"

"वे नलिनी का नाच देखना चाहते हैं। पैसे दे रहे हैं, काम दे रहे ; नाचना ही चाहिये। हमारी फिल्म निकली कि नहीं, देखना तब लिनी की शौहरत। अगर जमींदार पैसा न लगायेंगे तो फिल्म भी न नकल सकेगी। मामूली बात है क्या ? पूरे चार लाख लगा रहे हैं।"

"तुमने नलिनी से बातचीत की।"

"उससे तो बात करना मुश्किल हो रहा है।"

"इस ब्राह्मण ने बुरी तरह जकड़ रखा है, न यह अपना पेशा कर ाती है, न घर वाली ही बन पाती है। अच्छे शिकंजे में है।"

"सत्यं ढोंगी है। मैं उसकी हड्डी-हड्डी पहिचानता हूँ। यह मामूली ाह्मण नहीं है, पुजारी का लड़का है। देखना कभी नलिनी को दगा दे ायगा। तुम नलिनी से कहती क्यों नहीं हो ?"

"क्या कहूं बेटा ?"

"अगर वह नलिनी से इतना प्रेम करता है तो विवाह क्यों नहीं कर ता ?"

"विवाह ?"

"हाँ हां।"

"नलिनी और इसके साथ विवाह ? हरगिज़ नहीं।"

"मैं कव कहता हूँ कि नलिनी उस वाहियात दकियानूस आदमी से विवाह करे। नलिनी कह कर तो देखे, पता लग जायेगा कि वह कितने गहरे पानी में है। वह हरगिज़ शादी न करेगा, नलिनी की आंखें खुलेंगी, तव तुम अपनी दसों अंगुलियां घी में समझना।"

"ठीक कहते हो, बेटा, यह लड़की आंखें मूंदे बैठी है, नादान है, इतने दिनों इसके साथ रही है यह ही काफी है।"

"और एक खुशखवरी, नलिनी हमारे पिक्चर में नाचेगी और गायेगी भी।"

नलिनी वगल वाले कमरे में फिल्मी नृत्य किसी गीत के आधार पर सीख रही थी। ज्यों ही पद्मनाभ उस कमरे में गया वह शिक्षक इस तरह वाहर चला आया, जैसे उसका सरदार आ गया हो।

"नलिनी, तुम्हें गाने का शौक है न ? हमारी फिल्म में गाओगी ?" पद्मनाभ ने पूछा।

"मौका मिले तो जरूर—सत्यं से पूछ कर।"

"जव उसने नाचने की अनुमति दे रखी है तो गाने की क्यों न देगा ? ऐसा मौका मुश्किल से मिलता है।"

नलिनी चुप रही।

"मैं ही स्वयं सिखाऊँगा, म्यूजिक डायरेक्टर मैं ही हूँ न ?" उसने जेव में से एक पुस्तक निकाली और पास रखे हारमोनियम पर कोई राग निकालने लगा, साथ वह गाता भी जाता। नलिनी उसकी तरफ इस तरह देखती बैठ गई जैसे उसकी आवाज पर अचरज कर रही हो। वह उसकी आवाज और संगीत से बहुत प्रभावित थी। उसको क्या मालूम कि शहर में रहते-रहते वह पूरा चार सौ वीसिया हो गया है।

थोड़ी देर गाने के वाद पद्मनाभ ने कहा, "तुम हमारे घर एक वार क्यों नहीं आती हो ?"

"हूँ हूँ थोड़ी देर ठहर कर, "सत्यं को लेकर जरूर आऊँगी।"

"तुम सत्यं के साथ आने के लिए कहती हो और सत्यं अकेला ही फिरता है। क्या तुम यह सोच रही हो कि वह अब भी कोत्तपटनं का गँवार है? बहुत चलता-पुरजा हो गया है। रईसों की सौबत में रहता है। सुनते हैं किसी धनी की लड़की के साथ 'बीच' पर फिर रहा था। चित्र न बनाने का बहाना है। ब्राह्मण है, तिकड़मबाज, क्या भरोसा ?"

नलिनी चिबुक पर हथेली रख थोड़ी देर बैठी रही। चुप स्तब्ध। फिर वह अपनी माँ के पास चली गई। उसके पीछे-पीछे पद्मनाभ भी मुस्कराता-मुस्कराता चला गया। वह प्रसन्न लगता था।

उनतीस

मेरीना केण्टीन की छत पर एक पार्टी चल रही थी। इने-गिने परिचित मित्र ही निमन्त्रित थे। कृष्णमूर्ति और रुक्मणि का विवाह हुआ था। न शहनाइयाँ बजीं, न ढोल ही, न मंगल-सूत्र बाँधा गया, न हल्दी ही बरती गई। आधुनिक जमाने में आधुनिक ढंग से रजिस्ट्रार के दफ्तर में शादी कर ली गई थी।

फर्लांग दूरी पर समुद्र गरज रहा था। कात्तपटनं में भी यही समुद्र इसी तरह थपेड़ें खाता था। सत्यं कुछ याद कर रहा था। नलिनी उसके पास इस तरह बैठी थी, जैसे कोई मूर्ति हो। पार्टियों में वह पहले कभी शामिल न हुई थी। शर्माई हुई लगती थी। कई लोगों से पद्मनाभ ने उसका परिचय कराया, वह नमस्ते कर देती पर कुछ न बोलती, वह अभी तक नागरिक सभ्यता से भलीभाँति परिचित न थी।

कृष्णमूर्ति कहानी-लेखक था। आदिनारायण की फिल्म के लिए वह ही कहानी लिख रहा था। उम्र कोई तीस-बत्तीस की थी। पाँच-छः वर्षों से वह फिल्मी संसार में था। पर गरीबी ने उसका पीछा न छोड़ा था। नामवरी भी न थी। परदे पर एक क्षण के लिए आता और गायब हो जाता। वह असन्तुष्ट रहता, क्योंकि निर्माता और निर्देशक उसकी कहानी को इस तरह तोड़-मरोड़ देते कि लेखन का श्रेय स्वीकार करने में भी वह झिझक करता।

रुकमणि का परिचय अधिक लोगों को न था। उसने दो-तीन चित्रों में पांच-छः मिनट काम किया था। उम्र बीस-बाईस की थी। तेनामपेट में रहती थी। जाति-पांति में कहा जाता था कि वह ब्राह्मण है, यद्यपि उसकी मां वेश्या थी। कृष्णमूर्ति भी ब्राह्मण है।

पार्टी में सबसे खुश पद्मनाभ नजर आता था। दुलहिन भी रह-रहकर उसकी तरफ देखती थी। उसके परिचित उसको अलग ले जाते, काना-फूसी करते और ठट्ठा मारकर हँसते। वह घूम-फिरकर नलिनी के पास एकान्त आकर बैठ जाता।

सत्यं भी अनमना बैठा था। यूं तो वह भीड़ से कतराता था, पर इस तरह की भीड़ से तो वह घबराता था। वह एकान्त में पला था, एकान्त ही उसे प्यारा था।

नौ-साढ़े नौ के करीब पार्टी समाप्त हुई। घर पहुँचते-पहुँचते दस बज गए। चाँदनी खिली हुई थी। नलिनी और सत्यं छत पर जा बैठे। आस पास के लोग निद्रामग्न थे। शान्ति थी, सन्नाटा था।

नलिनी मुँडेर पर बैठ गई। वह मन में किसी चीज को उलट-पुलट रही थी। वह अपनी मां से भिन्न थी। वह और औरतों से भी भिन्न थी। वह घरवाली होना चाहती थी, पर और स्त्रियों की तरह नहीं। उसमें माता की ममता थी और चुलबुली वेश्या-कन्या की चंचलता भी। उसका अध्ययन करने से लगता था जैसे कोई चीज बनती-बनती अधूरी रह गई हो।

रुकमणि के विवाह ने उसके ख्यालों को उकसा दिया था। रुकमणि को उसने दो-तीन बार देखा था। पद्मनाभ को ढूंढते-ढूंढते वह उसके घर आई थी। उसके बारे में उसने कुछ सुन भी रखा था। वह, आज उसको विवाहित पा—वह भी एक ब्राह्मण से, चकित थी।

सत्यं भी अपनी उधेड़-बुन में था। वह इस भय में था कि नलिनी कहीं विवाह के बारे में न पूछ बैठे। वह उत्तर सोच रहा था। जो कोई उत्तर सोचता, उसको स्वयं सन्तोषजनक प्रतीत न होता। पर क्या

करता ? पिता की सलाह की अवहेलना करना आसान न था। वह इसलिए टिककर बैठ न पाता था।

"नींद आ रही है।" सत्यं ने जाने के उद्देश्य से कहा।

"इस चांदनी में भी। रोज तो सोते ही हो।"

सत्यं बैठ गया।

"मैं भी सोचती हूँ कि हम भी········"

"मुझे नींद आ रही है, कल सवेरे जल्दी जाना है।"

"आजकल जब कभी मैं बात करती हूँ या तो तुम्हें काम पड़ जाता है, नहीं तो बाहर जाने की नौबत आ जाती है। जब से तुम्हारे पिताजी आए हैं, तुम इस तरह गुम-से रहते हो कि कुछ पूछो नहीं।"

"क्या ऊट-पटांग बातें कर रही हो ?"

"आखिर इस तरह हम कब तक रहेंगे ? दुनिया है, जितने मुँह उतनी बातें।"

"दुनिया के बारे में बहुत जान गई हो, लगता है ?"

"कैसे कहूँ ?"

"मैं जानता हूँ तुम क्या कहना चाहती हो ?"

"कहने वाले न जाने क्या-क्या कहते फिरते हैं अगर हम भी······"

"कहने वाले घरवाला होने पर भी कहते रहेंगे। जल्दी ही क्या है, आज तुम्हें क्या पागलपन हुआ है ?" सत्यं को रह-रहकर पिता के वाक्य याद आ रहे थे।

"पर········"

"फिक्र न करो, मैं किसी और औरत से शादी नहीं कर रहा हूँ। जाओ, सोओ, काफी देर हो गई है।" सत्यं नलिनी को नीचे ले गया, नलिनी की हिचकियाँ बँध गई थीं।

तीस

अगले दिन नलिनी सत्यं से न बोली। वह रूठ गई थी। वह नाराज़ थी। उसे धक्का पहुँचा था। वह उससे बच-बचकर रहती। माँ से भी कुछ न कह पाती थी। वह अंगारे बरसाती। अन्दर का तूफान चुपचाप सह रही थी।

सत्यं ने भी उसको मनाने की कोशिश न की। उसे डर था कि बातचीत करने से कहीं बात का बतंगड़ न बन जाए। वह उसे कोई आश्वासन भी न दे पाता था। वह पिता पर लाल-पीला होता। फिर सोचने-समझने पर शर्मिन्दा होता।

काम भी न कर पाता था। श्री चौधरी के पास गया तो उन्होंने भी डाँट बता दी।

"क्यों भाई, आजकल चित्र क्यों नहीं दिखाते हो? बना नहीं रहे हो क्या?" उन्होंने पूछा।

"जी, कम ही बनाये हैं। आजकल फोटुओं की नकल करने में ही वक्त चला जाता है।"

"तो तुम भी यह करने लगे हो?"

"किये बगैर गुजारा नहीं होता।"

"अगर चित्रकार भूखा मरता है तो क्यों मरता है? क्योंकि वह अपने आदर्शों से समझौता नहीं कर पाता। जब वह करता है तो चित्र-

कार नहीं रहता।"

"पर........."

"हाँ, हाँ तकलीफें होती हैं। मैंने भी भुगती हैं। कष्टों की आँच में ही कलाकार पकता है। अगर वही काम जारी रखा तो न चित्र वन पाओगे, न आय ही बढ़ा पाओगे। हर रास्ते के अपने-अपने नजारे हैं, मंज़िलें हैं, चलते जाओ।"

"जी।"

"नौजवानों में एक और वात है, जहाँ पाँच-छः चित्र वनाये नहीं, जोश ठंडा हो जाता है और डींगें वढ़ जाती हैं। यही वजह है कि भारत में इतने कम चित्रकार हैं।"

सत्यं को कोत्तपटनं का स्वतन्त्र जीवन याद आने लगा। जब वह निश्चिन्त हो चित्र वनाता था। आज भी वह चित्र वनाता था, पर न वह निश्चिन्त था, न सन्तुष्ट ही। प्रसिद्धि के लिए कला का दाम दे रहा था।

"फिर तुम पर जिम्मेवारियाँ भी क्या हैं? शादी भी नहीं हुई है। अपना गुज़ारा तुम जैसे-तैसे कर ही सकते हो। साधना है। करते जाओ।"

सत्यं चुप वैठ रहा, वह उसके सामने उस समय अपना दुखड़ा नहीं रोना चाहता था। वह समय काटने की कोशिश में था। पर समय उसे ही काटता-सा लगता था। कभी इस मित्र के पास जाता, कभी उस मित्र के पास। अकेला सिनेमा भी देख आया था।

अगले दिन भी अनवनी वनी रही। सत्यं कुछ पूछता तो नलिनी रूखा-सा जवाव दे देती। उसने नृत्य-शिक्षकों को भी भेज दिया था। माँ से भी न वोल रही थी। कांचना को तो यह सन्देह होने लगा था कि कहीं लड़की को भूत न सवार हो गया हो।

शाम को पद्मनाभ आया। वह विचारा दुखी था, पर दुख का कारण सुनकर सव मन-ही-मन में हँस रहे थे। वापिनीडु यकायक कहीं गायव हो गया था। पद्मनाभ उसकी तलाश में परेशान था। उसने कई

जगह उसके बारे में तार भेजा था। मित्रों के घर उसकी खोज कर रहा था। पर अभी तक कोई सफलता न मिली।

अगर यह घटना किसी और दिन गुजरती तो सत्यं और नलिनी दोनों हँसते-हँसते लोट-पोट हो जाते। पर आज वे एक-दूसरे की तरफ देखते रह गये। कोई कुछ न बोला।

दो दिन बाद पता लगा कि बापिनीडु किसी बिगड़ी स्त्री के साथ कोत्तपटनं भाग गया था। वह मजे में था। बहुत दिनों बाद उसकी मुराद पूरी हुई थी। वह अपने मकान में ही रह रहा था। मद्रास की तड़क-भड़क वह अधिक दिनों तक न सह पाया। बड़े पेड़ को एक जगह से हटाकर दूसरी जगह गाड़ दिया जाय तो वह अक्सर मुरझा ही जाता है।

वे सब हँस रहे थे कि सत्यं के नाम भी एक तार आई। तुरन्त सन्नाटा छा गया। सत्यं के पिता की हालत बहुत खराब थी। अब और तब का मामला था। उसके मामा ने तार भेजा था। सत्यं को तो लकवा-सा मार गया, उसे कुछ न सूझा। वह कोत्तपटनं वापिस न जाना चाहता था, पर अब जाये बगैर रह भी न सकता था।

उसी दिन रात को वह मेल से कोत्तपटनं चला गया। नलिनी उसको स्टेशन पर छोड़ने के लिये गई। वह रो रही थी। सत्यं ने भी हिचकियाँ भरते-भरते विदा ली।

इकत्तीस

सत्यं मद्रास में न था। उसके पिता सख्त बीमार थे। उनकी हालत नाजुक थी। जब से वे मद्रास से गये थे, तभी से उन्होंने चारपाई पकड़ ली थी। सेवा-शुश्रूषा करने वाला भी कोई न था। उनकी अनुपस्थिति में कोत्तपटनं के मन्दिर की भी वही अवस्था थी, जो एक असहाय रोगी की होती है। पूजा-पाठ तो अलग, दीपाराधना भी न होती थी।

सत्यं दिन-रात पिता के पास रहता। दवादारू का भी प्रबन्ध करता, कोडूर से रोज डाक्टर आता, पर बीमारी वस्तुत: क्या थी डाक्टर जान न पाया था। अनन्तकृष्ण शर्मा निरन्तर सूखते जाते थे। हड्डियाँ-मात्र रह गई थीं। सत्यं ने उनको मद्रास लिवा लाना चाहा, पर डाक्टर ने इसके लिए अनुमति न दी।

घर में एक सम्बन्धी विधवा थी। वह रसोई करती थी। कोत्त-पटनं के परिचित, अपरिचित हमेशा आते जाते-रहते। दूर-दूर से सम्बन्धी भी आ रहे थे। सत्यं को इधर पिता की उपचर्या करनी पड़ती थी, उधर सम्बन्धियों की भी देखभाल। मद्रास में कमाया थोड़ा-बहुत पैसा था, इसलिए जैसे-तैसे गुजारा हो रहा था।

सत्यं के पिता उसकी तरफ देखते-देखते खाट पर पड़े रहते। उनके चेहरे पर हमेशा एक ही भाव रहता। वे पथरा-से गये थे।

सत्यं के सम्बन्धी कहा करते, "भाई यह मामूली बीमारी नहीं है मानसिक आधि है," सत्यं सिर हिला देता। वह जानता था कि उस आधि का वह ही बहुत अंशों तक कारण है। वह लाचार था।

"तुम उनके कहे अनुसार विवाह क्यों नहीं कर लेते? तुम [illegible] हो जाओगे और वे बच भी जायेंगे।"

सत्यं पशोपेश में रहता।

एक दिन सवेरे सत्यं के पिता ने उसको अपने पास खाट पर [illegible] कर कहा, "तुम्हारी मां आज होती……" सत्यं की आँखों में आंसू छलक पड़े, वह मां के वात्सल्य से वंचित था, वंचित था इसी [illegible] के प्रेम के लिए वह तड़पता।

"मुझे नहीं मालूम मैं कितने दिन जीवित रहूँ, मेरी इच्छा है कि तुम अपने मामा की लड़की से विवाह कर लो। वह अब [illegible] है। तुम्हारी माँ यह सम्बन्ध जरूर पसन्द करती। आज का [illegible] नहीं है, पीढ़ियों से चला आता है। कहो, बेटा!"

सत्यं मूर्तिवत् बैठा रहा। उसने जीवन की कुछ और [illegible] रखी थी। उसने नलिनी को कोई वचन न दिया था, पर [illegible] न दिया था क्योंकि वह जानता था कि एक दिन वह [illegible] ही। क्या पिता जी कहने-सुनने पर अनुमति न देंगे? [illegible] में दिन काटता आ रहा था।

"बेटा, पुराना खानदान है। वंश का नाम तो [illegible] सो होगया। पिता की इच्छा पूरी करो, नहीं तो [illegible] होगा?" उसके मामा ने समझाया।

सत्यं कुछ कह न सका और उसके पिता की आँखें [illegible] सी लगती थीं। निश्चल, निष्प्राण-सी। उन्होंने [illegible] और उसके लिए न जाने उन्होंने क्या-क्या बलिदान [illegible] दुबारा विवाह कर सकते थे, पर उसका पालन-[illegible] उन्होंने विधुर रहना ही पसन्द किया। बदनामी [illegible]

कभी भूलकर कड़वी वात न कही। यह सब सत्यं अब भली भाँति जानता था। पर वह कैसे उस बेल को सहसा दूर फेंक दे, जो उसके सहारे ही वढ़ती आ रही थी।

वह वरामदे में जाकर बैठ गया। वहाँ नारायण वावा बैठा था। पिता की वीमारी के समय वह भी पूछ-ताछ करने के लिए आ जाता था। नीच कुल का था, इसलिए वरामदे में से ही वह पूछ जाता था। यह गांव-औपचारिकता थी।

नारायण वावा ने अर्से से सत्यं से वात चीत न की थी। वह अब मद्रास से आया था। काम-काजी माना जाता था, गांव के लोग जो उसकी ओर नजर उठाकर भी न देखते थे, अब किसी-न-किसी वहाने उससे वात करने की कोशिश करते।

"अरे वाप की इच्छा पूरी करो न ? क्यों कपूत कहलाते हो ?" नारायण वावा ने कहा।

सत्यं झुँझलाकर रह गया।

"वेश्या की ही तो लड़की है। शादी करने पर भी उसको रख सकते हो। इधर पिता की मर्जी पूरी हो जायेगी और उधर कांचना की लड़की को भी कोई एतराज न होगा।"

सत्यं चुप रहा। नारायण वावा ने यह खुद किया था। पर कोई नहीं कह सकता था कि उस कारण कुछ सुखी भी हुआ था या नहीं। वह उसकी वातें न सुन सका। उसने सोचा क्यों न घर से चला जाय...... पिता को सच वताता हूँ, तव भी आफत है, जो होगा सो देखा जायेगा। वह न जाने क्यों चल भी दिया। वह वहाँ रह न पाया, पिता की आंखें उसका पीछा करती-सी लगतीं।

वह खेतों की मेड़ों पर से कोडूर की ओर जा रहा था। उन्हीं मेड़ों पर से, जो उसके जीवन की भाग्य-रेखा-सी हो गई थीं। वह अपने को अपराधी समझ रहा था। वह रोगी पिता को छोड़कर भाग जाना चाहता था, पर उसको कोई खींचता-सा लगता। इसी खींचातानी में

वह चलता जाता ।

वह पुल पर पहुँचा । चिन्तित, मुंडेर पर बैठ गया । नहर के पानी में देखने लगा । उसे ऐसा लगा जैसे नलिनी की परछाई देख रहा हो । यदि नलिनी के प्रति मेरा कर्तव्य है तो पिता के प्रति भी तो है, मुझे अपना कर्तव्य निबाहना चाहिए। वह सोच ही रहा था कि कोडूर की तरफ से वेणुगोपाल राव आते हुए दिखाई दिये ।

"पिता की क्या हालत है ?" उन्होंने पूछा ।

"वैसी ही ।"

"मैं उन्हें ही देखने जा रहा हूँ । तुम कहाँ जा रहे हो ?"

"जरा कोडूर तक ।"

वेणुगोपाल राव कोत्तपटनं की ओर चले गये। वेणुगोपालराव ने उस दिन से पहले उससे बात न की थी। अनन्तकृष्ण शर्मा से भी उनकी पुरानी अनबन थी, पर उनकी बीमारी ने उनको फिर साथ ला दिया था । वे प्राय: उनको देखने चले जाते थे ।

सत्यं उनको जाता देख सोचने लगा, "शत्रु भी उनको रोगी देख उनके पास जा रहे हैं और मैं पुत्र होता हुआ भी दूर भाग रहा हूँ। धिक्कार है मुझको ।"

वह कोत्तपटनं की ओर मुड़ गया। पर वह यह निश्चय न कर पाया था कि पिता की इच्छा पूरी करे कि न करे ।

बत्तीस

एलियट्स वीच पर छोटी-मोटी भीड़ लगी हुई थी। चार कारें खड़ी थीं। नौकर-चाकर दौड़ रहे थे। कई औरतें भी थीं। चांदनी भी थी। समुद्र वगल में गरज-गरजकर झाग हो रहा था। उसका अपना निराला संगीत था, निराला नज़ारा।

कोडूर के जमींदार अपने मित्रों के साथ वहाँ पिकनिक कर रहे थे। आदिनारायण के अलावा उनके और कई मित्र भी थे। नलिनी और कांचना निमन्त्रित थे, नलिनी का नृत्य-शिक्षक पिकनिक का प्रवन्ध कर रहा था।

एलियट्स वीच मद्रास के पास ही है, आड्यार के समीप, दक्षिण में। वहाँ कभी भीड़ नहीं रहती। धनी लोग ही जाते हैं। उन्हीं की अक्सर पिकनिकें होती हैं। वरना वह इलाका सुनसान रहता है, भयंकर भी। एक दो अंग्रेजों के स्मारक हैं, जो वहाँ समुद्र में डूव गये थे। दूर मछुओं ा एक गाँव है। गवर्नर साहव के लिए एक छोटा सा-बँगला है, जो यः खाली रहता है। आस पास नारियल के पेड़ हैं और एक तरफ ़ का जंगल। वाद में आड्यार के वड़े-वड़े वंगले।

कोडूर के जमींदार इस पिकनिक की वहुत दिनों से इन्तजारी कर रहे थे। अव उनको मौका मिला था। वह पिकनिक वस्तुतः नलिनी यान में रखकर व्यवस्थित की गई थी। सत्यं कोत्तपटनं में पिता की

सेवा-शुश्रूषा कर रहा था। नलिनी कांचना के साथ अकेली घर में रह रही थी।

उसके नृत्य-शिक्षक ने नलिनी के समक्ष जमींदार साहब की इच्छा प्रकट की। पर उसने स्वीकार करने में आनाकानी की। उसने कहा, "वे तो वहाँ हैं और मैं………"

तब कांचना ने कहा, "वह तेरी परवाह नहीं करता और तू उस पर जान देती है।" पहले कभी अगर मां यह कहती तो शायद वह नाखुश होती, पर अब सत्यं की विवाह के प्रति उदासीनता देखकर उसके विचारों में खलबली मची हुई थी। वह मानो एक भंवर में थी। कुछ निश्चय न कर पाती थी।

जमींदार साहब का निमन्त्रण नृत्य-शिक्षक पाठ की तरह रोज दोहराता गया। नलिनी ने पिकनिक के बारे में पहले कोई उत्साह न दिखाया। रोज शिक्षक आकर नई-नई दलीलें देता। उसकी मां भी उसका साथ देती। वह दिन-रात सत्यं के बारे में तानें कसती। कोडूर के जमींदार उसकी नजरों में भगवान्-से थे। उसने उनके सपने देखे थे कि कभी वह उनकी होकर भी रहेगी, पर सपना-सपना ही रह गया। परन्तु उसकी छोटी बहन का भाग्य अच्छा था, उसे मौका मिला। उसे बड़ी होने पर भी छोटी बहन के सामने दबकर रहना पड़ा। नीचा देखना पड़ा था, शायद उसमें ईर्ष्या भी थी। वह चाहती थी, चाहे कुछ भी हो, नलिनी जमींदार साहब की पिकनिक में जाय।

शिक्षक की यह युक्ति थी, "तुम्हें अकेले थोड़े ही बुलाया है, तुम्हारी मां भी जा रही है। बड़े आदमी हैं। निमन्त्रण को अस्वीकार करना अच्छा नहीं है।"

कांचना भी उसको चौबीसों घण्टे खरी-खोटी सुनाती। बुरा-भला कहती। उसने नलिनी को तंग कर रखा था।

आखिर वह पिकनिक में जाने के लिये मान गई। शाम को जब पद्मनाभ आया तो उससे इसके बारे में कहा। वह सुनते ही उबल पड़ा।

हालांकि उसी की यह करतूत थी। वह लगभग रोज आया-जाया करता, नलिनी को गाना सिखाता, कितने ही लालच देता। घण्टों बातचीत करता। नलिनी भी जाने क्यों उसकी तरफ बरबस झुकती जाती थी। इसका कारण सत्यं की उदासीनता थी, या पद्मनाभ का संगीत, या फिल्मी प्रसिद्धि का आकर्षण, या कुछ और, साफ-साफ प्रकट न होता था।

"तुम्हें जमींदारों के चंगुल में न फँसना चाहिए। वे एकदम बेईमान होते हैं। और कोडूर के जमींदार के बारे में कहने की जरूरत ही नहीं। अपनी मौसी को ही देखो।" पद्मनाभ ने एक फिल्मी कलाकार की तरह अपना 'संभाषण' पढ़ दिया।

नलिनी ने इस सलाह की अपेक्षा न की थी। वह सोच रही थी कि पद्मनाभ उसको जाने के लिए प्रेरित करेगा। परन्तु उसके इस तरह कहने से वह उससे और भी प्रभावित हुई।

"पर मैंने तो वचन दे दिया है।"

"जरा संभल कर रहना, मां को साथ ले जाना।" पद्मनाभ ने कहा।

नलिनी उसकी तरफ मुस्कराती-मुस्कराती, आंखें घुमा-घुमाकर नज़ाकत से देखने लगी।

"पर नलिनी······तुम भी······इस तरह·········हम दोनों एक जगह······तुम्हारी मां ने कहा नहीं?" वह कुछ कहना चाहता था, नलिनी की भाव-भंगिमा का अध्ययन करते हुए, संभल-संभल कर कहता जाता था और नलिनी मुस्कराती जाती थी, अगर पहले यह बात सुनती तो शायद बिल्ली की तरह उस पर झपट पड़ती।

पद्मनाभ मुस्कराकर रह गया। "खैर, संभलकर, मुझे जरा काम है।" वह चला गया। पिछले दिनों कांचना के सामने यह इच्छा प्रकट की थी कि वह नलिनी से विवाह करना चाहता है। कांचना चौंकी। वह दो व्यक्तियों का साथ रहना पसन्द करती थी, पर विवाह के बन्धन

उसे न भाते थे। पद्मनाभ उसको पसन्द आता था, मगर उसने अभी तक विवाह के बारे में न सोचा था।

नलिनी पिकनिक में चली आई। जमींदार साहब उसको प्रतिक्षण खुश रखने की कोशिश कर रहे थे। मां नौकरों से बात कर रही थी। जमींदार साहब को और अतिथियों की परवाह न थी। नलिनी बहुत देर तक चुप रही, पर बहुत मनाने पर वह बातें करने लगी। वह बच्ची न थी, सब जानती थी, जान-बूझकर भी न जाने क्यों वह उनसे बातें कर रही थी। वह शायद विवश थी। पर जब उससे नाच करने के लिए कहा गया तो उसने साफ इन्कार कर दिया।

जमींदार साहब बहुत खुश नजर आ रहे थे। उन्होंने नलिनी को सिनेमा के लिए निमंत्रित किया पर नलिनी साथ जाने को राजी न हुई। जमींदार साहब अपना-सा मुँह लेकर रह गए।

ग्यारह-बारह बजे तक पिकनिक चलती रही। साढे बारह बजे जमींदार साहब अपनी कार में, नलिनी और कांचना को उनके घर छोड़ आये। कांचना तो इतनी खुश थी मानों फिर जवानी की बहार आगई हो।

तेतीस

सवेरे नलिनी बहुत देर बाद उठी। वह नित्य कर्म करने के लिये भी अलसा रही थी। कभी अँगड़ाइयां लेती। कभी खिड़की से बाहर, नारियल के बाग में देखती। कभी दरवाजे के परदों को हिलाती, खड़ी हो जाती। मुँह निर्भाव सा लगता था।

कांचना जो अक्सर काफी देर तक सोती रहती थी, आज पहिले उठ गई। रसोई घर में तो वह हमेशा ऐसी जाया करती थी, मानों किसी अस्पताल में भरती हो रही हो। पर आज वह जल्दी "उपमा" वगैरह भी बना लायी थी। उन पोपले, पीले गालों पर लाली-सी आ रही थी। वह प्रसन्न थी।

नलिनी मुँह धोकर, बिना कुछ खाये, चादर ओढ़ फिर बिस्तरे पर लेट गई थी। वह सोच रही थी, "क्या मैंने सत्यं की अनुपस्थिति में जमींदार साहब के पास जाकर अच्छा किया ?" कई उत्तर आते, फिर वह शायद उत्तरों के औचित्य पर ही शंका करती। वह अजीब अवस्था में थी। कभी-कभी वह अपने से पूछती, "मैंने किया ही क्या है ? जब मैं रंगमंच पर नाच सकती हूँ तो क्या मैं स्वयं बाहर नहीं जा सकती ? क्या मुझे इतना भी अधिकार नहीं ?" वह थोड़ी देर निश्चिन्त बैठ जाती। फिर न जाने वह यकायक क्यों ठण्डी-सी पड़ जाती। वह अपने को अपराधिनी समझती।

"क्यों बेटी, खाया क्यों नहीं है ?"

"हूँ···?" नलिनी शायद कुछ कहना चाहती थी, पर उसने कुछ कहा नहीं।

"अगर तुम न खाओगी तो मैं भी न खाऊँगी," कांचना ने कहा। नलिनी करवट बदलकर दूसरी तरफ देखने लगी।

कांचना देहली पर बैठी गुनगुनाती जाती थी, "इतने दिनों तक पाला पोसा क्या इसीलिए ? कहे देती हूँ अगर माँ की बात न सुनोगी तो कहीं की भी न रहोगी ? माँ को भूल कर इस दुनिया में लोग बिगड़े हैं, बने नहीं हैं। समझी ? क्या बुरा काम किया है जो इस तरह परेशान हो रही हो ? जात का काम है, पुरखे यही करते आये हैं, सबका अपना-अपना काम है। बड़े आदमी हैं, जमींदार हैं। क्या मैं किसी ऐरा गैरा के पास ले गई थी। चाहे तुम सावित्री बनो या सीता लोग तुझे मेरी लड़की ही समझेंगे, न कि इस टटपूंजिये ब्राह्मण की पत्नी। तुमने कोई ऐसा काम नहीं किया जो एक वेश्या की लड़की को नहीं करना चाहिये। मैं यह देखने के लिये नहीं जी रही हूँ कि तुम इस ब्राह्मण के छोकरे के साथ अपनी जिन्दगी बरबाद करो। बड़ी हूँ। कह रही हूँ, आगे तुम्हारी मर्जी।" वह बड़-बड़ाती चली गई। पर जाती कहाँ ? थोड़ी देर बरामदे में घूम-घाम कर फिर चली आई।

"तो तुम नहीं खाओगी ? तुम्हें मेरी बात समझ में नहीं आती ?"

"तुम जिद क्यों करती हो ?" नलिनी उपमा खाने लगी।

"मुझे मालूम था कि मेरी लड़की इतनी बेअक्ल नहीं है। इस दुनिया में सबका अपना-अपना काम है।"

"हां, हां," कहते हुए जमींदार साहब बिना किसी सूचना के यकायक कमरे में घुस आये। यह बेअदबी थी। माँ की उपस्थिति में नलिनी कुछ न कह सकी, वह हड़बड़ाती हुई बैठी रही।

जमींदार साहब कांचना के कान में कहने लगे, "तुम ठीक कहती हो। हो सकता है कि दुनिया में कई ऐसे देश हों जहाँ डॉक्टर न हों,

वकील न हों, जमींदार न हों, किसान न हों, और ये कम्बख्त नेता न हों, पर कोई ऐसी जगह नहीं है जहाँ तुम्हारे पेशे के लोग न हों वे हंसने लगे। कांचना भी अपना पोपला मुंह लिये खिसियाने लगी।

"नींद तो आई।" जमीन्दार साहब ने नलिनी से पूछा। व शर्माती हुई, तौलिया लेकर गुसलखाने की ओर जाने लगी।

"बैठो भी, तुम जैसी हो वैसी ही अच्छी लगती हो। बैठो भी। मैं चाहता हूँ कि तुम नाच अच्छी तरह सीखो, मद्रास में नाचने वाले बहुत हैं, कई माहिर भी हैं, तुम्हें उनकी बराबरी करनी चाहिए। एकबार तुम्हारा नाम हो गया तो फिल्म चल पड़ेगी। क्या कहती हो कांचना ?"

"आप ठीक कह रहे हैं साहब।" कांचना ने कहा। पर नलिनी ने उनकी तरफ देखा तक नहीं।

"तुम थकी हुई लगती हो। मुझे भी जाना है। शाम को अड्यार में नौका विहार के लिये आना। आओगी न ?" जमींदार ने नलिनी से पूछा।

"पर......"

"कोई एतराज नहीं होना चाहिये। क्यों कांचना ?"

"जी।"

"जब कभी कुछ चाहिए, खबर भिजवा देना। मैं नहीं चाहता कि पैसे की तंगी के कारण तुम्हें कोई दिक्कत हो।" वे कहते कहते चले गये। नलिनी को यह धांधली पसन्द न थी। पर क्या करती ?

नलिनी नहा धोकर कमरे में बैठी थी कि नृत्य शिक्षक आया, उसने तबियत खराब होने का बहाना किया। वह कुछ सोचती जाती थी, फिर कमरे में बेचैन इधर उधर घूमने लगी।

थोड़ी देर बाद पद्मनाभ आया। वह जमींदार साहब के पास से [illegible] रहा था। उसकी जेब गरम थी। उसने अपनी दलाली वसूल करली [illegible], क्योंकि उसीने नलिनी के जाने के लिए अनुकूल वातावरण तैयार [illegible]ा था, यद्यपि वह स्वयं पिकनिक में न था। उसने नलिनी के सामने

ज़मींदार साहब की बुराई भी की थी। जब पद्मनाभ जैसे 'चोरी' करने लग जाते हैं, तो वे अपने पद-चिह्न भी नहीं छोड़ते। उनके एक मुँह नहीं होता, कई मुँह होते हैं। एक हृदय नहीं, कई। वे कई व्यक्तियों के समूह से होते हैं.........कभी कुछ हैं, कभी कुछ और।

"नलिनी, तुम ने अच्छा नहीं किया कि कल तुम उनकी पिकनिक में गई। कितनी बदनामी होगी, सत्यं को मालूम हुआ तो वह बेचारा क्या समझेगा? न जाने क्या होगा?" पद्मनाभ ने कहा।

"मालूम हो गया तो क्या? क्या उसने इसको खरीद रखा है? दुनियाँ भस्म तो नहीं हो जायगी।" कांचना ने कहा।

नलिनी चिन्तित बिस्तरे पर बैठ गई। वह उलझन में थी। [illegible] कांचना से कह रहा था, "मैं तो एक बात कह रहा था और तुम [illegible] बुलबुला उठीं।" वे थोड़ी देर चुप रहे।

"तुम इस तरह कब तक बैठी रहोगी? आओ, घूम आयें। [illegible] बाहर है।" पद्मनाभ ने कहा।

"पर........."

"तुम हमेशा पर-पर करती हो। फिक्र मत करो। [illegible] आओगी तो सत्यं कुछ न कहेगा। वह जानता है। कब तक [illegible] नोंचती रहोगी?"

नलिनी ने अपनी माँ की ओर देखा और उसको [illegible] देख, वह पद्मनाभ के साथ चली गई। सिवाय उसके [illegible] और आदिनारायण के, किसी ऐसे व्यक्ति को, जो [illegible] हो, मालूम न था कि वह जमींदार के साथ गई थी। [illegible] थी कि सत्यं को इसका पता लगे। अगर पद्मनाभ ने [illegible]...

पद्मनाभ उसको आदिनारायण के घर ले गया। [illegible] प्रेरित करने के लिए उसको आवश्यकता न थी। [illegible] देर तक इस तरह बात करते रहे, जैसे [illegible] भोजन का समय हो गया था, नलिनी कार में [illegible]

पद्मनाभ स्वयं आदिनारायण से अकेला कुछ सलाह-मशवरा करता रहा। शायद पैसे का मामला था। यद्यपि आदिनारायण कंजूस था, पर पद्मनाभ के लिए उसकी मुट्ठी बन्द न थी।

नलिनी ने पद्मनाभ से कहा, "आज जमीन्दार साहब ने फिर बुलाया है। बड़ा खूसट है, अच्छी आफत है।"

"मैंने कहा था न कि उसके चंगुल में न पड़ो। देख ही रही हो।"

"पर मैं क्या करूँ? कह दूँगी कि तबीयत खराब है। न जाने सत्यं कब आयेगा?"

"नहीं ऐसा न करना, बड़ा खतरनाक आदमी है। खून भी करते नहीं हिचकता। मैं सब इन्तजाम कर दूँगा। आज तो जाना ही पड़ेगा। इन लोगों के साथ सम्भल कर चलना चाहिए।"

नलिनी उसकी तरफ ताकने लगी। पद्मनाभ पर उसको विश्वास हो गया था। फिर वह ऐसी हालत में थी कि जो कुछ वह कहता उसे करना पड़ रहा था।

"घबराओ मत, मैं सत्यं को चिट्ठी लिख दूँगा।" पद्मनाभ ने कहा

उसने नलिनी के घर खाना खाया। कांचना और नलिनी से बहुत देर तक बातचीत करता रहा।

शाम को नलिनी को नौका विहार के लिए भी जाना पड़ा। उसका नृत्य का शिक्षक उसको लेगया था, माँ घर में ही रह गई थी और नौका में वे दो ही थे—जमीन्दार साहब और नलिनी।

जब वह घर पहुँची तो आधी रात हो रही थी। उसकी आँखों में आसूँ थे।

चौंतीस

सत्यं बदल गया था। उसे यकायक जीवन शून्य और संसार निरर्थक लगने लगा। वह पच्चीस वर्ष की उम्र में ही अधेड़-सा हो गया था। पिता की मौत ने उसको जीवन के प्रति उदासीन कर दिया था। वह कोत्तंपटनं में न रह सका। वह तुरन्त मद्रास चला आया, पद्मनाभ अभी नलिनी को पत्र लिखने का आश्वासन ही दे रहा था।

उसने आँख भी न खोली थी कि भगवान् ने माँ की साया उसपर से हटा ली। जीवन में प्रवेश किया था कि पिता का सहारा भी हट गया। वह एकाकी था, उसके सामने जीवन था, भविष्य था, पर वह संघर्ष से भयभीत, निष्क्रिय बैठा था। उसे जीवन तुच्छ प्रतीत होने लगा। मृत्यु की अपरिहार्यता के सामने जीवन की महत्वाकांक्षाएं अनावश्यक-सी लगने लगीं।

वह कई दिन खाली बैठा रहा। काम करना चाहता तो भी न कर पाता। इधर-उधर घूमता फिरता। वह अपने को अपराधी मानता, पिता की मौत का जिम्मेदार। हो सकता है, अगर वह पिता की इच्छा पूरी कर देता तो वे अब तक जीवित रहते।

शहर में खाली बैठना आसान नहीं है और नींद बुलाने पर भी नहीं आती है। जीवन चलता जाता है, भले ही उसमें ठोकरें हों। चट्टानों से टकरा-टकराकर नदी ही अपना रास्ता प्रायः बदल लेती है।

परिस्थितियों से लड़ता-लड़ता जीवन टेढ़ा-मेढ़ा हो बहता है। छोटी चट्टान नदी में लुढ़क जाती हैं और बड़ी चट्टानें किनारा बनकर खड़ी हो जाती हैं। और एक दिन—अन्त में प्रवाह मृत्यु में लय हो जाता है। एक जीवन समाप्त होता है और परिस्थितियों पर मौत का परदा पड़ जाता है।

घर में तंगी थी। नलिनी चाहे तो हजारों रुपये एकत्र कर सकती थी, पर वह अभी इतनी नीच न हुई थी। सत्यं उसके बारे में कतई बेखबर था। नलिनी शायद इतनी निर्दयी भी न थी कि घायल सत्यं पर और चोट करे। सत्यं पहले की तरह उससे बातचीत न कर पाता था। वह अपना दुःख भूल न पाता था। नलिनी उसको पिता की याद दिलाती थी। नलिनी के साथ रहना मुश्किल हो रहा था और नलिनी के बगैर असम्भव। उसका जीवन खूँटी में बन्ध-सा गया था।

जब तक जीवन है, जीवन बहता है, शून्य जीवन भी बहता है। कहते हैं कि समय की गतिशीलता के साथ जीवन भी परिवर्तनशील है। सत्यं के एक परिवर्तन आया था पर परिवर्तनों की प्रक्रिया जारी थी। वह जीवन का मैदान छोड़कर नहीं जा सकता था। वह निष्क्रिय भी न रह सकता था।

नलिनी उसका मन बहलाने की कोशिश करती। उसके प्रेम में क कृत्रिमता-सी आ गई थी। वह अब उस लता की तरह थी, जो क वृक्ष के तने पर लिपटी-लिपटी आसपास के पौधों पर भी लिपट ी थी। पर उसको यह डर सताने लगा था कि अगर सत्यं को मालूम गया और उसने उसका साथ छोड़ दिया तो? इसलिए वह अन्यत्र शायद एक सुरक्षित स्थान बना लेना चाहती थी। यह भी ठीक सत्यं की अनुपस्थिति में कुछ ख्यालात उठते थे और उसकी उपस्थिति छ और। सालों का साथ था।

ोजी का सवाल था। घर बैठे तो घरबार चलता नहीं। उस लनी के भरण-पोषण की जिम्मेवारी थी। पिता के पास कोई

फिर ख्याल आया कि हम इन्तजारी करते रहें और यहाँ मौका चूक जाए। आदमी पर मुसीबतें आती ही रहती हैं। कब तक मातम मनाते रहोगे ?"

"क्यों नलिनी, तुम क्या कहती हो ?" सत्यं ने पूछा।

नलिनी हाथ-पर-हाथ रख उसके कन्धे का सहारा ले खड़ी हो गई। "जैसें तुम्हारी मर्जी" उसने कहा।

"पैसे की फिक्र न करो। जमीन्दार देने के लिए मान गये हैं।" पद्मनाभ ने धीमे से कहा, जैसे बड़ी मेहरबानी कर रहा हो, "मैंने उनसे बातचीत कर ली है इस बारे में।"

"वे कौन होते हैं देने वाले ?" सत्यं ने इस तरह कहा मानो मिट्टी के तेल को दीयासलाई दिखा दी गई हो, "मैं तो अभी पंगु नहीं हुआ हूँ। मेरे भी हाथ-पैर हैं। नलिनी आज इतना सीख गई है तो उनकी दान-दक्षिणा पर तो नहीं ? कितना खर्च होगा ?"

"नहीं नहीं, मेरा मतलब था कि बचपन में उन्होंने नलिनी की मदद की थी—" पद्मनाभ कह ही रह था।

"की होगी, बचपन की और बात है और अब कुछ और। कम ही ऐसे जमीन्दार हैं, जिनकी नीयत अच्छी होती है। उनकी आँखों में चरबी पड़ी रहती है और दिल तो होता ही नहीं। नहीं मैं नहीं मानूंगा। अगर नलिनी प्रदर्शन करेगी तो मेरे पैसे पर, नहीं तो नहीं। कितना खर्च बैठेगा ?"

"पाँच-छः सौ।" पद्मनाभ ने धीमे से कहा।

"दो-चार महीने में मैं ही इतना कमा लूंगा। इस बीच में नलिनी और अभ्यास कर सकेगी ?" नलिनी उसकी ओर इस प्रकार देख रही थी मानो मन्दिर में किसी देवता की मूर्ति के सामने खड़ी हो। अपराध की भावना जो उसको बींधती रहती थी, यकायक जलाने लगी। उसने दिल खोलकर रोना चाहा।

सत्यं शान्त स्वभाव का था। उसे गुस्सा अवसर न आता था और

पैंतीस

दस-पंद्रह दिन बीत गये ।

जब सत्यं स्टूडियो में जी तोड़कर मेहनत कर रहा होता, पद्मनाभ
अक्सर नलिनी से बातें करने आ जाता । नलिनी उसको प्रसन्न करने
का निरन्तर प्रयत्न करती । पद्मनाभ के पास एक ऐसा भेद था, जो
वह उसके विरुद्ध कभी भी उपयोग कर सकता था । वह उसकी अंगु-
लियों पर नाचने को मजबूर थी ।

कांचना को भी यह मेल-मिलाप पसन्द था । पद्मनाभ से वह काफी
या-पैसा ऐंठ लेती थी । हर हालत में सत्यं से उसकी नज़र में वह
छा और दुनियादार था ।

पद्मनाभ इस तरह अभिनय करता मानो उसको नलिनी का कोडूर
न्दार साहब के यहाँ जाना बिलकुल पसन्द न हो । परन्तु उसी का
ह वस्तुतः प्रबन्ध था कि वह सत्यं की अनुपस्थिति में जमीन्दार के
ी हो आया करे । उसका शिक्षक उसको ले जाता । कांचना इतनी
जर आती, जैसे खुद तीस-एक की प्रौढ़ा हो ।

सारा काम इस तरह चलता कि सत्यं को कुछ भी न मालूम
कार में नलिनी को ले जाया जाता । और अगर कभी देरी हो
ी कहा जाता कि रिहर्सल में देरी हो गई थी । सत्यं को यह
था । न उनको यह गवारा था कि नलिनी फिल्मों में काम

करे । पर वह नलिनी का दिल दुखाना न चाहता था ।

एक बार जब स्त्री झुकती है तो शायद झुकती जाती है । पत का आकर्षण बहुत जबरदस्त होता है । चोटी से लुढ़का पत्थर भी जाकर ही रुकता है । क्षणिक आवेश में नलिनी कुछ कर बैठी थी औ अब उस गलती को सुधारने का साहस उसमें न रह गया था ।

आदिनारायण भी कभी-कभी उसको ले जाते । उसको जाना पड़ता क्योंकि वे भी पद्मनाभ की तरह उसका भेद जानते थे और अभी त उसने सत्य से किनारा करने का निश्चय न किया था, यद्यपि उसक माँ लगातार इसके लिए प्रेरित कर रही थी ।

जमीन्दार साहब की पत्नी कोडूर चली गई थीं । नौकर-चाकर भी बड़ा मकान लगभग सूना था । नलिनी तक भी अफवाहें पहुँची थीं । जमीन्दारी के रद्द होने के कारण जमीन्दार की आर्थिक स्थिति अच्छ न थी । पुराने जेवर-जवाहारात बेचकर गुजारा किया जा रहा था सरकार की तरफ से हरजाना भी न मिला था । पुरानी आदतें भी छोड़ भी न पाते थे । शायद यह ही कारण था कि बचत के लिए उनक पत्नी कोडूर चली गई थीं । जमीन्दार साहब को अब भी विलासिता सता रहा था ।

नलिनी उनके मकान में घुसी ही थी कि उसने अपनी मौसी व बैठक में बैठा पाया । वह नाखुश नजर आती थी । लगता था, जै जमीन्दार उनसे बातें करते-करते उठकर चले गये हों ।

"तबीयत तो ठीक है, नलिनी ?" मौसी ने पूछा ।

"तुम कब आईं मौसी ?"

"कल ।"

"खबर भी न भेजी ?"

"इनसे निबटकर खबर देने की सोची थी । क्यों ठीक तो है, ?" नलिनी को खड़ा देख कर, "बैठ जाओ । वे अभी आते जाते हैं ।" उसक ने कहा ।

पैंतीस

दस-पंद्रह दिन बीत गये।

जब सत्यं स्टूडियो में जी तोड़कर मेहनत कर रहा होता, पद्मनाभ अक्सर नलिनी से बातें करने आ जाता। नलिनी उसको प्रसन्न करने का निरन्तर प्रयत्न करती। पद्मनाभ के पास एक ऐसा भेद था, जो वह उसके विरुद्ध कभी भी उपयोग कर सकता था। वह उसकी अंगुलियों पर नाचने को मजबूर थी।

कांचना को भी यह मेल-मिलाप पसन्द था। पद्मनाभ से वह काफी रुपया-पैसा ऐंठ लेती थी। हर हालत में सत्यं से उसकी नज़र में वह अच्छा और दुनियादार था।

पद्मनाभ इस तरह अभिनय करता मानो उसको नलिनी का कोडूर जमीन्दार साहब के यहाँ जाना बिलकुल पसन्द न हो। परन्तु उसी का ही यह वस्तुतः प्रबन्ध था कि वह सत्यं की अनुपस्थिति में जमीन्दार के यहाँ भी हो आया करे। उसका शिक्षक उसको ले जाता। कांचना इतनी खुश नजर आती, जैसे खुद तीस-एक की प्रौढ़ा हो।

यह सारा काम इस तरह चलता कि सत्यं को कुछ भी न मालूम होता। कार में नलिनी को ले जाया जाता। और अगर कभी देरी हो जाती तो कहा जाता कि रिहर्सल में देरी हो गई थी। सत्यं को यह पसन्द न था। न उनको यह गवारा था कि नलिनी फिल्मों में काम

करे। पर वह नलिनी का दिल दुखाना न चाहता था।

एक बार जब स्त्री लुढ़कती है तो शायद लुढ़कती जाती है। पतन का आकर्षण बहुत जबरदस्त होता है। चोटी से लुढ़का पत्थर नीचे जाकर ही रुकता है। क्षणिक आवेश में नलिनी कुछ कर बैठी थी और अब उस गलती को सुधारने का साहस उसमें न रह गया था।

आदिनारायण भी कभी-कभी उसको ले जाते। उसको जाना पड़ता। क्योंकि वे भी पद्मनाभ की तरह उसका भेद जानते थे और अभी तक उसने सत्य से किनारा करने का निश्चय न किया था, यद्यपि उसकी माँ लगातार इसके लिए प्रेरित कर रही थी।

जमीन्दार साहब की पत्नी कोडूर चली गई थी। नौकर-चाकर भी। बड़ा मकान लगभग सूना था। नलिनी तक भी अफवाहें पहुँची थी कि जमीन्दारी के रद्द होने के कारण जमीन्दार की आर्थिक स्थिति अच्छी न थी। पुराने जेवर-जवाहरात बेचकर गुजारा किया जा रहा था। सरकार की तरफ से हरजाना भी न मिला था। पुरानी आदतें थीं। छोड़ भी न पाते थे। शायद यह ही कारण था कि बचत के लिए उनकी पत्नी कोडूर चली गई थी। जमीन्दार साहब को अब भी मिथ्याभिमान सता रहा था।

नलिनी उनके मकान में पहुँची ही थी कि उसने अपनी मौसी को बैठक में बैठा पाया। वह नाराज नजर आती थीं। ऐसा लगता था, जैसे जमीन्दार उनसे बातें करते-करते उठकर चले गये हों।

"तबीयत तो ठीक है नलिनी?" मौसी ने पूछा।

"तुम कब आई मौसी?"

"कल।"

"खबर भी न भेजी?"

"उनसे निबटकर खबर देने की सोची थी। माँ ठीक तो है?" नलिनी को खड़ा देख कर "बैठ जाओ। वे अभी आये जाते हैं।" जमना ने कहा।

नलिनी चुप बैठ गई। वह इतनी सयानी हो चुकी थी कि वह आसानी से अनुमान कर सकती थी कि उसकी मौसी क्यों आई थी। नौकर-चाकरों ने कोडूर जाकर उसको खबर दे दी थी। जमीन्दार साहब ने उसको रुपया-पैसा भी भेजना बन्द कर दिया था।

"आखिर तुम्हें भी—" जमना कह रही थी, पर नलिनी ने अनसुना करके चेहरा मोड़ लिया। "मैं जानती हूँ, मैंने आगाह किया था। मैं पिस रही हूँ, यह काफी है। तुम्हारी माँ से भी कहा था, पर न जाने वह क्या देखती है इन लोगों में ?"

नलिनी ने विषय बदल देने के उद्देश्य से पूछा, "कहां ठहरी हुई हो मौसी ?"

"होटल में।"

"हम जो थे यहाँ ?"

"हो तो, कोडूर से आते वक्त कहा तक भी नहीं, न तुम्हारी माँ ने, न तुम ने।"

दोनों चुप बैठी रहीं। इतने में जमीन्दार साहब कमरे के अन्दर आये। वे नलिनी को देखकर मुस्कराये, "अरे यह क्या बेवकूफी है, मैंने कहा था कि मेरी तबीयत खराब है, और वह तुमको ले आया।" उनका इशारा नलिनी के नृत्य-शिक्षक की ओर था। "बैठो नलिनी," जमीन्दार साहब ने कहा। उसकी मौसी कभी उसको घूरती, कभी जमीन्दार साहब को।

"मैं आप से कहे देती हूं कि अगर आपने मेरे गुजारे के लिए कोई इन्तजाम न किया तो—" जमना कह रही थी और जमीन्दार साहब बेफिक्र हो मूंछे मरोड़ रहे थे। "आप सोच रहे होंगे कि मैं नलिनी के सामने इस तरह की बातें क्यों कर रही हूँ ? मैं चाहती हूँ कि नलिनी भी किसी धोखे में न रहे। आप लोगों का क्या भरोसा ? मेरे पास सब चिट्ठी-पत्री है, फोटो भी हैं। जब आप शादी के फेरे मेरे साथ लगा रहे थे। मैं कोई बाजारू स्त्री नहीं हूं।" नलिनी वहां से उठकर

चली गई और बरामदे में जा खड़ी हुई। "मैंने बहुत दिन इन्तजार की, आखिर कब तक करूँ ? कहिये पैसे का इन्तजाम करेंगे कि नहीं ?"

जमीन्दार चुप रहे। वे पुराने ढंग के आदमी थे। नरम स्वभाव था। वे अच्छे-पढ़े लिखे भी थे। पर उन्हें औरतों का बुरा व्यसन था. वे औरतों को समझाते भी खूब थे। उनको मालूम था कि बादल हमेशा गरजता नहीं है और गरजते बादल को रोका भी नहीं जा सकता।

"आप कहते क्यों नहीं ?"

"सब ठीक हो जायगा, घबराओ मत।"

"यही कहते-कहते आपने महीनों काट दिये।"

"क्यों गरमाती हो ?"

"मैं कहे देती हूँ कि अब मुझसे नहीं देखा जा सकता। हमें आप क्यों पूछेंगे। किसी और को फँसा लिया है न ? आपने कोई इन्तजाम न किया तो मैं कोर्ट में दावा कर दूँगी। मुझे हर्जाना मिलेगा। नहीं तो किसी को भी न मिलेगा।" कहती-कहती जमना उठ गई। काफी दौड़-धूप के बाद वह जमीन्दार साहब से मिल पाई थी। दो बार घर आई पर वे घर में न थे। फोन करवाया पर वे फोन पर भी न आये। जब मुलाकात हुई तो जमना ने बिना आगे-पीछे देखे आग बरसा दी।

"आओ बेटी, चलें घर।" उसने नलिनी का हाथ पकड़ा और टैक्सी में उसको घर ले गई। रास्ते में न वह नलिनी से बोली न नलिनी ही उससे।

सत्यं अभी घर न आया था। कामना और जमना बहुत देर तक जोर-जोर से बातें करती रहीं। पास वाले कमरे में नलिनी सिसकती जाती थी।

छत्तीस

जमना अपना सामान वगैरह कांचना के घर ले आई थी। उसके आने के दो उद्देश्य थे। एक, जब तक वहां रहती जमींदार साहब नलिनी को ले जाने का साहस न करते, और दूसरा यह कि वह अपनी बहिन से नलिनी के बारे में बातचीत भी करना चाहती थी।

सत्यं को जमना का घर में रहना कतई पसन्द न था, पर आज-कल कई ऐसी चीज़ें हो रही थीं, जो उसको पसन्द न थीं। वह जिस वातावरण से भाग कर आया था, वही वातावरण फिर यहाँ तैयार होगया था। वे व्यक्ति जिनसे वह दूर रहना चाहता था मद्रास आगये थे।

वह अपने काम में मस्त रहने का प्रयत्न करता। वह जल्द से जल्द नलिनी के नृत्य के प्रदर्शन के लिये पांच-छः सौ रुपये कमा लेना चाहता था। वह स्टूडियो में काम करता और बाहर भी। वह कई ऐसे काम करने लगा था जिससे स्टूडियो के अधिकारी प्रभावित हों और उसके वेतन में वृद्धि करें।

जमना के घर में आने से और कुछ हुआ हो या न हुआ हो, नलिनी ो घर में रहने का मौका मिला। उसको जबरदस्ती जमीन्दार के घर हीं ले जाया जाता था। उसकी माँ की कड़वी, तीखी, तेज़ाबी जबान ताला पड़ गया था। पद्मनाभ आता जाता रहता।

जमना और कांचना कुछ न कुछ बातें करती ही रहतीं।

"जमींदारों के पीछे तुम फालतू पड़ी हुई हो। मैंने नाक कटवाई है, मैं जानती हूं। फजूल की गुलामी है, एक कानी कौड़ी भी नहीं भेजता, हो तब न? यह फिल्म सब एक चाल है। ३०-३५ हजार रुपये का कर्ज मिल गया है, वही शायद लगाये। कहीं ३०-३५ हजार से कोई फिल्म बनती है? नलिनी की आंखों में धूल झोंकने के लिये कर रहा है। आखिर नलिनी न घर की रहेगी न घाट की ही।" जमना ने कहा।

"पर क्या किया जाय?"

"शादी करदो, नलिनी ऐसी लड़की नहीं है कि बाजार में बैठे। आखिर बाजार में भी तो इसलिए ही बैठा जाता है कि कोई अच्छा आदमी मिले और अलग घर बार बसाया जाय।"

"हम लोगों ने यही गल्ती की थी। मैं एक आदमी के पीछे पड़ी रही, वह बरबाद होगया और मैं भी बरबाद होगई। पैसे-पैसे का मोहताज होना पड़ा।" कांचना कह रही थी।

"हां ठीक कहती हो। मैं भी इस जमीन्दार के भरोसे बैठी थी और वह ही मुझे अब दर-दर भटका रहा है।"

"इसी लिए मैं चाहती थी कि वह किसी के सहारे न रहे। जवानी के दिनों में दो चार रुपये बनाले और आराम से घर बैठे। पर यह तो उस ब्राह्मण पर दिवानी हुई है। अब जाकर रास्ते पर आई है। और ऐसे चल रही है, जैसे मुझ पर एहसान कर रही हो। अपनी जात की कोई स्त्री घरवाली भी होजाये तो एक वक्त आता है, जब घरवाला ही उस पर यकीन नहीं करता। छोटी उम्र है, समझती नहीं है।" कांचना ने स्पष्ट-स्पष्ट कहा। शायद दोनों बहिनों में इतने स्पष्ट रूप से कभी भी बात न हुई थी।

"पर स्वभाव की बात है। जवान लड़की पर जोर जबरदस्ती अधिक दिन काम नहीं करती। उसकी शादी सत्यं से ही क्यों नहीं कर देतीं?" जमना ने पूछा।

"इसीकी वजह से तो यह तबाही है। यह भला इसे क्या खुशी रखेगा?

कभी काम है कभी नहीं है। इन मौसमी आदमियों से घर वार चलाना आसान काम नहीं।"

"तो फिर पद्मनाभ से—"

"हां, वह कुछ कामकाजी है। चलता पुरजा है। मैं भी नहीं चाहती कि नलिनी इस हालत में ज़मीन्दार साहब के सहारे जिये। वह बूढ़ा भी हो चला है और तुम कहती भी हो—" कांचना ने इस तरह कहा जैसे वह जमना की वात से पूरी तरह सहमत हो। वस्तुतः उसको मन में अव भी विश्वास न था कि ज़मीन्दार की इतनी वुरी हालत है। आखिर एक बूढ़ा हाथी कई कोल्हू के वैलों से वेहतर है।

जमना मुस्कराई। भले ही ज़मीन्दार के यहाँ उसका काम पूरा न हुआ हो, उसको लग रहा था, जैसे उसका उद्देश्य यहाँ पूरा होगया है। "वैसे मैं पूछना चाहती थी कि क्या सत्यं की नलिनी से विवाह करने की इच्छा नहीं है ?"

"इच्छा होगी, पर क्या वह कोई पागल है ? जव विना शादी के ही काम चलता हो तो शादी का क्यों झमेला ? सत्यानाश कर रखा है।" कांचना ने कहा।

वे सव खा पीकर लेट गये। तीन चार वजे के करीव पद्मनाभ आया। वह अक्सर रोज इसी समय आजाता था। वह नलिनी के कमरे में जा ही रहा था कि कांचना ने उसको वुलाया। जमना भी पास वैठी थी।

उसको कुर्सी पर विठाते हुए कांचना ने कहा, "वेटा, हमारी उम्र होगई है। वस, चन्द दिनों की मेहमान हूँ। सोचती हूँ कि मेरे जीते-जी ही नलिनी के हाथ पीले होजायें।"

"सत्यं···?"

"सत्यं की वात छोड़दो। मैं अपनी लड़की उसके हाथ छोड़ना नहीं चाहती।"

"नलिनी को तो तुम जैसा दूल्हा मिलना चाहिए।" जमना ने कहा।

"पर क्या नलिनी मानेगी ?"

"क्यों नहीं मानेगी ? बच्ची है, उसको क्या मालूम है।" कांचना ने कहा।

"मुझे तो कोई एतराज नहीं है, पर—"

"पर बेटा क्या ?" कांचना ने हैरानी से पूछा।

"मैं इसी दिन की इन्तजार बरसों से कर रहा था। तुम्हें मद्रास इसलिए ही बुलाया था। सत्यं के पिता को भी इसीलिए चिट्ठी दी थी ताकि वे "असलियत" जान जायें, जानती हो न मेरा मतलब ? पर आजकल मंदी का जमाना है, फिल्म पूरी होने दो फिर दसों अंगुलियां घी में होंगी।" पद्मनाभ मुस्कराने लगा। "पर—" कहता-कहता वह नलिनी के कमरे में चला गया।

पद्मनाभ इन बातों में कोरा नौसिखिया न था। उसने दुनियां देखी थी। औरतों को जानता था। उसने अपनी खेतीबाड़ी कभी न की थी, दूसरों के खेत से चुरा कर ही उसने अपना काम चला लिया था। उसका बचपन से ही यही स्वभाव था। जन्मजात परम्परागत संस्कारों का यकायक बदल जाना बहुत मुश्किल है। पर हो सकता है कि वह नलिनी से सचमुच विवाह करना चाहता हो। कह नहीं सकते।

शाम को सत्यं लड़खड़ाता घर आया। वह उदास था। कांचना ने जमना के कान में कहा, "कहीं पीकर तो नहीं आया है ? अच्छी आफत है।"

सत्यं ने पी नहीं थी। वह बहुत थक गया था, वह बिना नहाये-धोये अपने बिस्तर पर लेट गया। नलिनी के बार-बार पूछने पर उसने बताया, "मैंने वह काम छोड़ दिया है।"

"क्यों ?"

"मैंने कहा था न कि मैं नौकरी नहीं कर सकता। मैं इनकी गुलामी नहीं कर सकता। मैंने अच्छा काम किया और हैड-आर्टिस्ट जल उठा। यों तो वह बहुत दिनों से जल रहा था, वह पागल इस ख्याल में था

कि मैं उसकी जगह हड़प लूँगा। आज वह मुझे पांच-दस आदमियों के सामने डांटने डपटने लगा, अधिकार जमाने लगा, जैसे मैं उसका खरीदा हुआ गुलाम हूँ। मैं नहीं सह सका।''

नलिनी की आँखों से आँसू टपकने लगे।

''पर फिक्र न करो। पैसे का इन्तजाम होजायेगा। भगवान मदद करेंगे। तुम्हारा नृत्य प्रदर्शन होगा ही।'' सत्य ने कहा। नलिनी के समीप वह अकेला बैठ गया।

जब कांचना के पास यह खबर पहुँची तो उसने कहा, ''मैंने कहा था न कि इन चित्रकारों का क्या भरोसा? मौसमी फूल हैं।''

सैंतीस

कई दिन बीत गए। सत्यं ने बहुत दौड़-धूप की पर कोई सफलता न मिली। जिम्मेवारियां बढ़ती जाती थीं।

पिता की मृत्यु हुए कई महीने गुजर गये थे। जीवन के संघर्ष में वह उनकी बात भी भूल गया था। नलिनी की उपस्थिति में वह अपने को दिलासा देता, नया उत्साह पाता।

दो-एक चित्र बिक गये थे। गुजारा चल रहा था। पर नृत्य-प्रदर्शन के लिए अभी पाँच सौ रुपये इकट्ठे न हो पाये थे। नलिनी उदास रहती। बातें भी कम करती।

सत्यं के घर में अब आने-जाने वालों की संख्या अधिक हो गई थी। नृत्य-शिक्षक ही वहाँ घन्टों रहता। नलिनी प्रदर्शन के लिए तैयारियां कर रही थी। निरन्तर अभ्यास की आवश्यकता थी। कांचना की उपस्थिति से वह और भी खिझा रहता। नलिनी से ठीक तरह बातें भी न कर पाता था।

काँचना सत्यं को देखकर हमेशा आंखें तरेरती रहती। सत्यं के घर में रहने से न नलिनी ही कहीं जा पाती थी, न नलिनी के पास ही कोई आ पाता था। उसकी बहन जमना [illegible] जा चुकी थी। वह कभी-कभी पद्मनाभ के घर हो आती थी।

कल वह नलिनी पर बोल उठी। सत्यं [illegible] [illegible] में था। शायद

वह चाहती था कि सत्यं भी सुने। "लोग आजकल पत्नियों को नहीं पूछते हैं, तुझे क्या पूछेंगे ? तू पगली है। जमाना हो गया अच्छा खाये पिये। कब तक यहाँ फिजूल तंग होती रहेगी ? यह सब तू इसीलिए ही तो कर रही है, क्योंकि मेरा और कोई सहारा नहीं है। देखती हूँ तू कब तक सताती है ?" कांचना रोने लगी।

रात भर नलिनी खिन्न रही। पर जब सत्यं खिन्न होता तो वह उसको ढाढस बँधाती। ऐसा लगता था जैसे वह कुछ कहना चाहती हो और कह न पाती हो।

अगले दिन शाम को सत्यं उसको समुद्र-तट पर ले गया। भीड़-भड़ाका था। रविवार था। कई परिवार हवा खाने आये हुए थे नलिनी और सत्यं भीड़ से बचकर समुद्र के किनारे टहलने निकल गये फिर एक एकान्त जगह पर बैठ गये।

सत्यं के सामने वह दृश्य आ गया। संक्रान्ति का त्योहार, रंग-बिरगें कपड़े, थपेड़ें खाता समुद्र, घरौंदे, मन्दिर, मण्डप, नलिनी से प्रथम मिलन, उसका जीवन नदी की तरह स्रोत से बहुत दूर बह गया था। समुद्र की तरह वह रुंधा हुआ भी था।

"नलिनी, तुम आजकल इतनी उदास क्यों रहती हो ? पैसे की फिक्र है ?"

"नहीं, मैं उदास कहाँ हूँ ?"

"नहीं, झूठ कहती हो, माँ डांटती-डपटती हैं, क्या इसीलिए ही ?"

"उसकी तो डांटने-डपटने की आदत है, मैं भी सुनती-सुनती आदी हो गई हूँ।"

"फिर तुम उदास क्यों रहती हो ?"

"मैं रहती ही नहीं हूँ।"

"इसलिए कि मैंने तुम से उस दिन विवाह के बारे में कुछ न कहा था ?"

नलिनी की आँखों में यकायक आँसू छलक आये।

है, कभी कुछ नहीं। किस्मत की बात है।"

"तुम्हारी भी तो यही हालत है। दसियों चित्र बनाते हो, मुश्किल से एक बिकता है। गली-गली फिरते हो।"

"खैर, किसी की गुलामी करने से तो यह ही भला। पर मालूम है, वे लोग इतनी मेहनत क्यों करते हैं ? शायद इसलिए कि किनारे पर उनकी कोई इन्तजार कर रहा होता है। तुम भी मेरी प्रतीक्षा करती हो ?"

"प्रतीक्षा करते-करते ही तो इतने दिन बीत गये हैं।"

"अब प्रतीक्षा न करनी होगी।"

"हमें पैसे की बहुत जरूरत पड़ेगी। क्यों नहीं उस चेट्टियार के पास फिर जाते, जिसने तुम्हारे चित्रों की तारीफ की थी ? कहते थे, कि भला आदमी है, पारखी है, मदद न करेगा क्या ?"

"पैसे की फिक्र न करो, मैं कल हो आऊंगा उसके पास।"

वे काफी देर तक समुद्र तट पर रहे। जब वे घर वापिस पहुँचे तो कोडूर के जमीन्दार साहब की कार उनको सामने से आती हुई मिली। वे सत्यं को देखकर मुस्कराते-मुस्कराते चले गये।

अड़तीस

सत्यं ग्यारह-बारह बजे के करीब श्री चेट्टियार के घर गया। उसके हाथ में दो-तीन चित्र थे। एक तो वही चित्र था, जो उसने सालों पहिले बनाया था—विद्युत रेखा पर नृत्य करती नलिनी, कामुक आँखें,। मजबूरी थी। वह चित्र अब उसको भाता भी न था।

फाटक पर उसे गुरखे दरबान ने रोक दिया। उसने अन्दर खबर भिजवाई। सत्यं को फाटक के पास धूप में इन्तजारी करनी पड़ी। दस-पन्द्रह मिनट बीत गए। पर अन्दर से अनुमति न आई। उसने सोचा शायद चेट्टियार साहब भोजन कर रहे होंगे।

इतने में आईस-क्रीम वाला साइकल की घंटी बजाता हुआ उस तरफ आया। घर के बच्चे दौड़ते-दौड़ते बाहर आए। एक लड़की ने धूप से बचने के लिए एक बड़ा-सा कागज का टोप पहन रखा था और कागज पर चित्रित सुन्दर युवती की आँखें सत्यं की तरफ घूरती-सी लगती थीं।

उसका माथा ठनका। वह स्तब्ध खड़ा हो गया। और श्री चेट्टियार बरामदे में खड़े अट्टहास कर रहे थे। "बेटा, टोप सम्भालकर पहन लो। नहीं तो धूप लग जायगी।" वे हंस रहे थे। लड़की ने कागज का टोप ठीक किया।

सत्यं को यह जानते देर न लगी कि वह उसका चित्र था। वही

चित्र जिसकी चेट्टियार ने प्रशंसा की थी। जिसको उन्होंने सौ रुपये देकर खरीदा था। उसने आँखें मींच लीं। वह दृश्य न देख सका। उसने सोचा कि शायद यह बच्चों ने खेल-खिलवाड़ में उसके चित्र की यह गति करदी होगी।

बच्चे आईस क्रीम खरीद कर फव्वारे के पास झाड़ियों के झुरमुट में बैठ गए। फव्वारे में एक कागज की नाव—बड़ी रंग-बिरंगी, तैर रही थी। छोटी-छोटी लहरें उठ रही थीं। एक लड़का नाव को गति देने के लिए फव्वारे की मुंडेर पर बैठा पंखा कर रहा था और बच्चे आईस क्रीम चाटते-चाटते उसे बड़े चाव से देख रहे थे।

श्री चेट्टियार कह रहे थे, "धूप में न खेलो, अन्दर आओ, बच्चो।" सत्यं अपनी उपस्थिति की सूचना देने के लिए उनकी तरफ उचक-उचककर देखने लगा। वह फव्वारे की तरफ देखते ही पसीना-पसीना हो गया। कांप-सा उठा। फिर तुरन्त पत्थर की तरह निश्चल खड़ा हो गया। उसका दूसरा चित्र फव्वारे में किश्ती बनकर तैर रहा था। उसके हाथ के चित्र नीचे गिर गए।

वह बंगले की तरफ काफी देर तक देखता रहा। एक अंधे की तरह, जिसकी आँखें खुली हुई हों, पर कुछ दीख न रहा हो। "देखते क्या हो, जाओ। साहब काम में लगे हुए हैं। वे अब तुम्हें नहीं देख सकते।" गुरखे ने कहा।

सत्यं मशीन की तरह चल दिया। मानो उसकी बुद्धि बेकाम हो गई हो। वह इस आशा से आया था कि वह कला पारखी, जिसने उसको इतना प्रोत्साहन दिया था, क्या एक-दो चित्र भी न खरीदेगा?

उसने कभी कल्पना भी न की थी कि उसके चित्रों की एक 'कला-पारखी' के घर यह गति होगी। वह सोचा करता था कि उसके चित्र भी दीवार पर कमरे की शोभा बढ़ाने के लिए लटका दिए गए होंगे। वह चलता जाता था। इस तरह मानो वह स्थिर न रह पाता हो।

"कला पारखी है, ढोंग है। पाँच-दस बड़े आदमियों को चित्र

खरीदते देख लिया होगा। उनकी देखा-दाखी चित्र खरीद लिये। काला अक्षर भैंस बराबर। ये बन्दर क्या जाने अदरख का स्वाद ? फिर यह प्रशंसा क्यों ?" उसके मन में विद्रोह की भावना उठ रही थी।

"ये पैसे वाले सब ऐसे ही होते हैं। प्याज बेचते-बेचते पैसे बनाए हैं। बुद्धि कहाँ से आयेगी ? हंस के पंख हंस को ही फबते हैं, कौवे को नहीं। ये बत्तमीज़।" वह सोचता जाता था। अन्दर जलन उसके विचारों में दावाग्नि-सा काम कर रही थी। वह श्री चेट्टियार को मय बंगले के जला देना चाहता था। वह जलती मशाल की तहर चलता जाता था।

"उसने सोचा होगा कि मैं पाँच-दस में उसकी प्रशंसा करूंगा। उसका नाम होगा। यह मेरा काम नहीं है। मैं चित्रकार हूँ। चित्रकार को इन लोगों ने कठपुतली समझ रखा है। ये पैसे वाले देना नहीं जानते, दान में भी वे पूंजी लगाने की फिराक में रहते हैं।" उसके विचार बेकाबू हो रहे थे। वह लड़खड़ाता जाता। जैसे कोई पियक्कड़ हो।

"कुछ भी हो, भूखों ही मरना पड़ जाय, मैं इन नालायकों के हाथ अपने चित्र नहीं बेचूँगा। नहीं बेचूंगा। मुझे दान नहीं चाहिए। मैं नहीं बेचूंगा।" वह सड़क के पुल की मुँडेर पर थोड़ी देर के लिए बैठ गया।

उसे लग रहा था कि नलिनी सजी-धजी, बनी-ठनी, रंगमंच पर थी और नाचते-नाचते यकायक पायल बजने बन्द हो गए थे। सन्नाटा छा गया हो। वह उठ खड़ा हुआ। बैठा न रह सका।

"क्या प्रदर्शन न होगा ? होगा क्यों नहीं ? भगवान् कोई और रास्ता दिखायेंगे। क्या नृत्य-प्रशंसक भी इसी चेट्टियार की तरह होते हैं, नलिनी को अपनी महत्वाकांक्षायें पूरी करनी ही चाहियें। मुझे पैसे जुटाने होंगे। जमीन्दार की मदद ली जाय ? नहीं, हरगिज नहीं। ये सब मतलबिए होते हैं। कम-से-कम हम में से एक तो सफल हो।" उसके पैर हल्के से लगने लगे। चाल में तेजी आ गई। वह चलता जाता था, उस के पैर घर की ओर पड़ रहे थे।

उनतालीस

वह लड़खड़ाता-लड़खड़ाता घर पहुँचा। मूर्छित-सा था। सीढ़ियों पर ही बैठ गया। वह तुरन्त घर में न जा पाया। नलिनी से कैसे कहे कि चेट्टियार ने जान-बूझकर उसका अपमान किया है।

ऊपर से पायल की ध्वनि आ रही थी। नृत्य-शिक्षक गा रहा था। कांचना दरवाजे के पास बैठकर, बरामदे में पान के लिए सुपारी काट रही थी।

संगीत चलता रहा। नलिनी को खबर भी न थी कि सत्यं नीचे बैठा हुआ है। सत्यं के मन में एक प्रकार की शून्यता आ गई थी।

"वाह, वाह तुम खूब नाचती हो। इतना सा समय बरबाद किया। तुमको पहले ही प्रदर्शन करना चाहिए था।" शिक्षक ने कहा।

"इस ब्राह्मण मेंढ़क को जुकाम हो गया है। घरबार चलाने के लिए और प्रदर्शन के लिए पैसा देने की कह रहा है।" कांचना ने मिर्चें मलाईं।

"वे किसी से माँगने भी तो नहीं देते।" शिक्षक ने कहा।

"अन्दर-अन्दर जलता होगा कि नलिनी उससे अधिक मशहूर न हो जाय।" कांचना ने कहा।

"फिल्म में एक बार चमकी नहीं कि फिर देखना नलिनी के भाग्य। सोने के बट्टों से तुलेगी, रुपया बरसेगा, प्रसिद्धि होगी।" शिक्षक ने कहा।

"पर यह बम्मन-बावला क्या इसे फिल्मों में काम करने देगा ?" कांचना ने पूछा।

सत्यं ऊपर जाना चाहता था। उसका बस चलता तो कांचना का गला घोंट देता। पर नलिनी को चुप पा वह चिन्तित था। वह वहां से उठकर चला गया। गलियों में फिरता रहा।

थकथकाकर वह घर पहुँचा। आखिर प्रेमी की दौड़ तो मस्जिद तक भी नहीं होती। वह तो खूंटे से बंधा हुआ होता है। फेरे में ही घूमता है। पायल की ध्वनि आ रही थी। संगीत चल रहा था। कांचना दरवाजे के पास न थी। तब भी वह ऊपर जाने का साहस न बटोर सका। वहीं सीढ़ियों पर बैठ गया।

यकायक पायल की ध्वनि रुकी। किसी चीज़ के गिरने की आवाज़ आई। सत्यं चौंका। पर हिला नहीं। काफ़ी देर तक शान्ति रही। उसने सोचा कि नलिनी विश्राम कर रही होगी। अब वह उससे अपनी बात कह सकेगा। वह उठा। पर पायल की ध्वनि फिर आने लगी। वह खम्भे के सहारे बैठ गया, कैसे जाकर कहे कि जिस प्रदर्शन के लिए वह इतनी मेहनत कर रही है, वह शायद फिलहाल न हो सके। तो क्या उसकी शादी भी स्थगित रहेगी, वह सोच रहा था।

फिर पायल बजने बन्द हो गये। सत्यं साहस करके अन्दर गया, वह देहली पर ही लकड़ी की तरह खड़ा रह गया। नलिनी और पद्म-नाभ उसके सामने गाढ़ आलिंगन में खड़े थे। उसने कल्पना भी न की थी कि पद्मनाभ ऐसा काम करेगा। नलिनी उसकी ओर तिरछी नज़र से देख रही थी।

सत्यं दो क्षण वैसे ही देखता रहा। न वह बोला, न हिला। फिर बाल नोचता हुआ सीढ़ियों से उतर गया। जब वह नीचे दरवाज़े के पास गया तो कांचना कह रही थी, "जा बे जा, तू मेरी लड़की को क्या सुखी रखेगा ? हटी बला।" पद्मनाभ अट्टहास कर रहा था। सत्यं ने पीछे मुड़कर भी न देखा। वह चलता जाता था, उसने अपने कुरते

के चीथड़े कर दिये थे। जब वह गली की नुक्कड़ में पहुँचा तो उसके पीछे-पीछे हो हल्ला करती हुई बच्चों की भीड़ चलती जाती थी। उसकी चाल में पागलों की गति थी, बेफिक्री, बेबसी। कदम चलते जाते थे।

चालीस

माउन्ट रोड के किनारे, बिजली के खम्भे के नीचे, बड़े-बड़े चित्र कोयले से बने हुए प्राय: दिखाई देते हैं। एक टीला, टीले पर मन्दिर, उफनाते समुद्र की पृष्ठभूमि में, विद्युत रेखा पर पायल बांधे नाचती एक सुन्दर युवती। युवती का आकार नलिनी से मिलता-जुलता है, जब वह छोटी थी और जवानी की कली पूरी तरह न खिली थी। चित्र सदा एक ही तरह के होते हैं। उनके नीचे हमेशा मोटे-मोटे अक्षरों में "सत्यं" लिखा रहता है।

कभी-कभी सत्यं कॉस्मोपॉलिटन क्लब के सामने, जहाँ बड़े-बड़े लोग कला-पारखी, रईस, आते-जाते रहते हैं, कोयला लेकर फुटपाथ पर चित्र बनाता रहता है। सत्यं को पहिचानना मुश्किल है। धूल-धूसरित घुंघराले बाल, बढ़ी दाढ़ी, झुर्रियों वाला चेहरा, चीथड़े हुए-हुए कपड़े, अस्थि पिंजर,। वे बड़ी-बड़ी आखें, जो उसके चेहरे को कभी आकर्षक बनाती थीं, अब संगमरमर की सी लगती हैं। वह एक कमजोर वृक्ष की तरह था, जो लता के भार से भूमिसात् हो गया हो।

उसके आसपास हमेशा एक छोटा-मोटा झुंड बना रहता है। कोई उस पर अचरज करता है, कोई अफसोस करता है, कोई डांटता-डपटता है। पर वह कभी कुछ नहीं बोलता। चुप रहता है।

कभी-कभी भीड़ को चीरती हुई एक अधेड़ युवती आती है।

छोटे-से बर्तन में खाना लेकर। पर वह उसे देखता भी नहीं है। उसका लाया हुआ खाना भी वह नहीं छूता है। वह वहाँ से उठकर चला जाता है। युवती उसके पीछे-पीछे, आँसू बहाती-बहाती थोड़ी दूर जाती है, फिर हताश चली जाती है।

वह नलिनी है। वह कई घाट घूम आई है और अब भी गन्दे नाले की तरह बू छोड़ती हुई बहती जाती है। वह बाजार में बैठती है पर सौदा नहीं कर पाती है। बीमारियों के कारण खोखली हो गई है। जब कभी कोई कामुक भूला-भटका आ जाता है तो चूल्हा चढ़ता है।

पद्मनाभ ने नलिनी से इस तरह का सलूक किया, जैसे वह कोई दुधारू गाय हो और वह स्वयं दूध बेचने वाला ग्वाला हो। आदिनारायण उसके मुख्य ग्राहक थे। और भी कई आते। नलिनी जंजीरों में जकड़ी गुलाम की तरह थी, न जी पाती थी, न मर ही पाती थी।

आदिनारायण फिल्म न बना सका, पैसा काफी न था। अधूरी फिल्म किसी को बेचकर वह कोत्तपटनं वापिस चला गया था। दिवालिया होते बाल-बाल बचा। अब खेती बाड़ी में मस्त था।

कोत्तपटनं के मन्दिर में दिया भी न जलता था, वह खण्डहर हो चुका था। कई और परिवार मद्रास चले गये थे। वह उजाड़ गाँव और भी सुनसान-सा लगता था। मेले वगैरह भी न होते थे। समय बदल गया था।

जहाँ एक रील भी पूरी न हुई कि पद्मनाभ को और निर्माताओं ने काम देना छोड़ दिया। फिल्मी दुनियां की विचित्र प्रथा का वह भी शिकार हुआ। पैसे-पैसे का मोहताज होना पड़ा। शराबी हो गया था वह ठीक तरह गा भी न पाता था। आजकल वह चिन्गलपेट कोढ़ियों के अस्पताल में है।

कांचना और कोडूर के जमीन्दार साहब, अर्सा हुआ, जीवन समाप्त कर श्मशान की मिटी बन चुके थे।

पिछले दिनों यह भी सुना गया कि सत्यं चान्दनी रात में, बच्च

के बनाये हुए घरौंदों को बिगाड़ता हुआ मस्त हाथी की तरह घूम रहा था। समुद्र के किनारे की झाग समेटने की कोशिश करता और जब झाग उसके हाथ से खिसक जाती तो खिलखिलाकर हँसता-हँसता समुद्र के ज्वार में जा कूदता। किसी पुलिस-मैन ने उसको देख लिया। उस पर हत्या का आरोप लगाया गया परन्तु न्यायाधिकारी ने उसको पागल करार दिया। उसको पागलखाने भेज दिया गया।

पागलखाने में उसको देखने की अनुमति केवल नलिनी को है। वह हर सप्ताह उसको इस तरह देख आती है, जैसे मन्दिर में भगवान् का दर्शन करने गई हो। वह पछता रही है।

शुभमस्तु